महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(चतुर्थ खण्ड)

पृष्ठ संख्या
001-100
तक

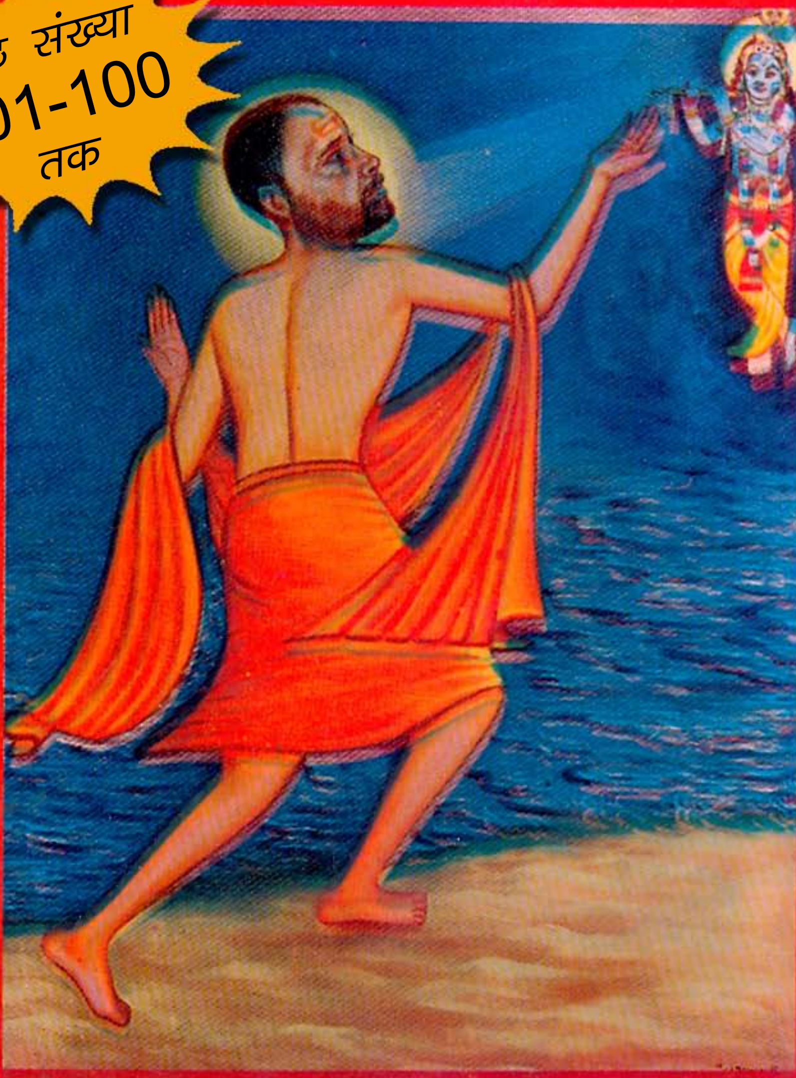

साधु कृष्णप्रेम

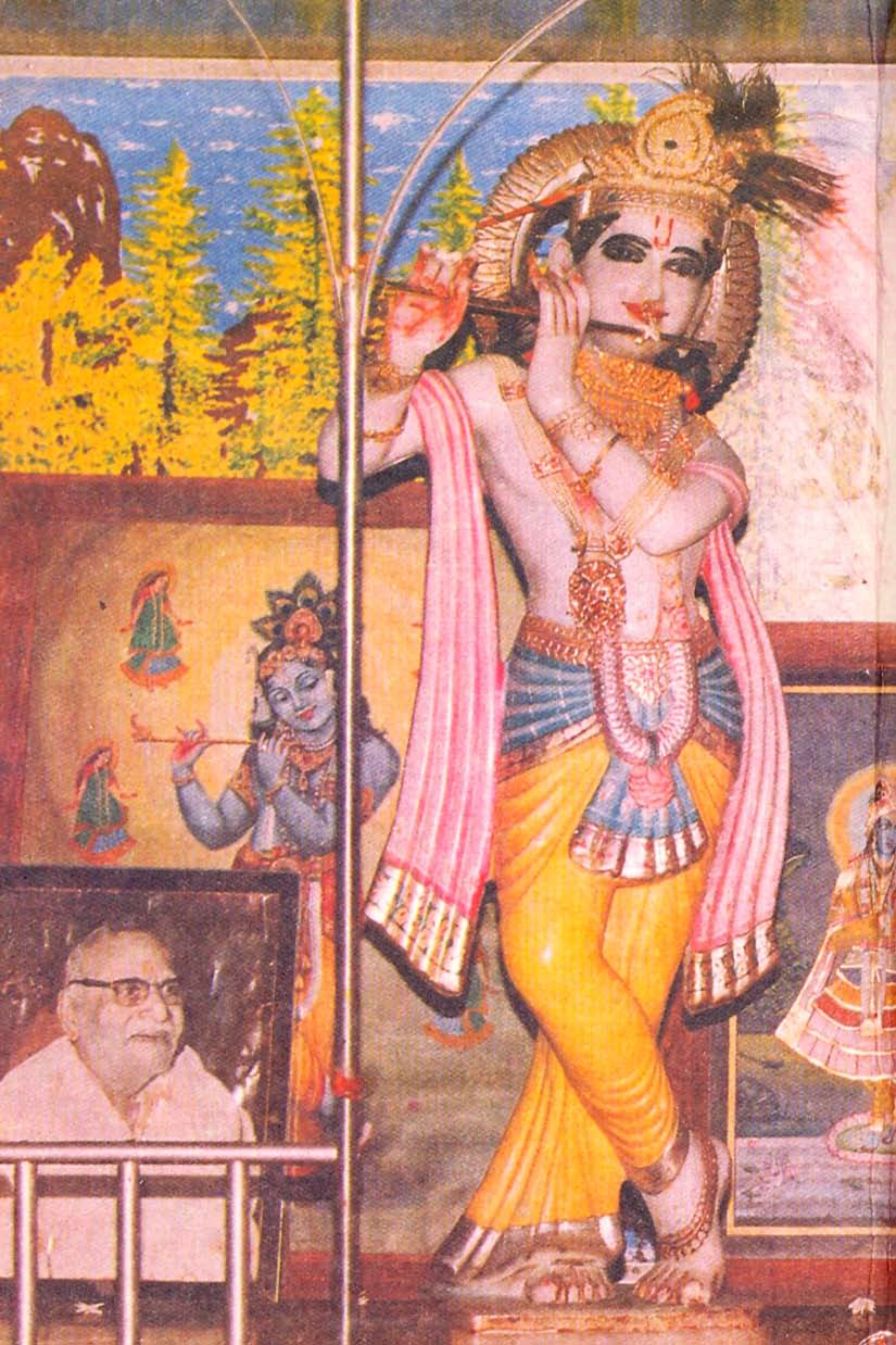

महाभाव-दिनमणि

श्रीराधाबाबा

चतुर्थ खण्ड

सन्त–समर्पणतत्व, रासलीलादर्शन
एवं
तीर्थयात्राट्रेनमें दिव्यानुभूतियाँ
तथा
काष्ठमौनतकके जीवनप्रसंग

लेखक :
साधु कृष्णप्रेम

प्रकाशक
साधु कृष्णप्रेम
अध्यक्ष, श्रीमती विमलाबाई चैरिटी ट्रस्ट,
षोडश गीत मन्दिर, अनाथालयके पीछे, बीकानेर-३३४ ००१ (राजस्थान)

राधामाधव प्रकाशन, षोडश गीत मन्दिर,
अनाथालयके पीछे,
बीकानेर
(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्रीराधाष्टमी, श्रीकृष्ण सं. ५२२३
(१० सितम्बर, १९९७)

प्रथम प्रकाशन १००० प्रतियाँ
न्यौछावर रु. १५०/-

मुद्रक
जनसेवी प्रिण्टर्स
दाऊजी मंदिर भवन
बीकानेर - ३३४ ००३
फोन नं. ५२२४६९

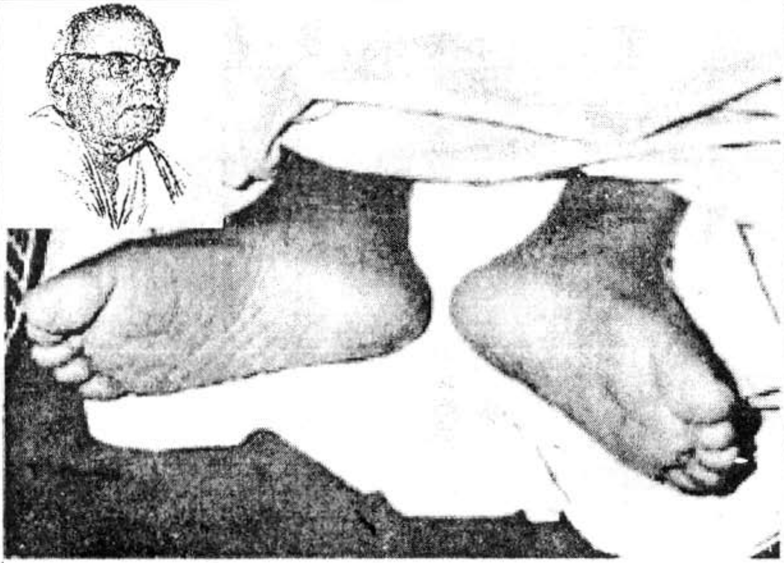

श्रीपोद्दार महाराजके श्रीचरणोंमें

प्रेरक तुम, प्रेरणा तुम्हारी, रस-रति-भाव तुम्हारे रूप ।
करके तुम्हीं दिखाते, स्वयं लिखाते लीला तुम्हीं अनूप ॥
देते खोल भाव अनुपम, शब्दोंका शुचितम तुम भण्डार ।
रचना तुम करवाते, सुनते तुम्हीं उसे फिर कर मनुहार ॥
विमल भाव-मुख्रं निज दर्शनका यह अपना ही कृति-दर्पण ।
ज्योति बढ़ाता सहज परस्पर, तुम्हें हो रहा है अर्पण ॥
भली-बुरी यह वस्तु तुम्हारी, तुम्हीं सर्वथा स्वामि अनन्य ।
तुच्छ अबोध मलिन इस जनको बना निमित्त कर दिया धन्य ॥

साधु कृष्णप्रेम

(पुस्तकका सार-संक्षेप)

इस रस-कालिन्दीके तटके नौ सोपान

प्रथम अध्यायमें

अनुशीलन करें – महासिद्ध सन्तोंकी कृपाको अपने भीतर अवतरित करानेका अमोघ साधन जान लें। बस, अपना 'आत्म समर्पण' किसी भी सच्चे सिद्ध सन्तको करें और पलक झपकते,अविलम्ब विलक्षण रसके सम्प्लावनमें डूबकर उस सिद्ध सन्तसे एक हो जावें।

द्वितीय अध्यायमें

अवगाहन करें -- उस दुर्दान्त पुलिस-इन्सपेक्टरके अश्वकी लगाम पू. गुरुदेवने उछलकर पकड़ ली। उनके नेत्रोंमें सात्विक शौर्यकी जैसे ज्वाला फूट रही थी। पू.गुरुदेवने घोड़ेको इतने जोरसे धक्का दिया कि वह आठ-दस कदम पीछे हटनेको बाध्य हो गया। मैं चीत्कारकर पू.गुरुदेवकी रक्षार्थ आगे बढ़ूँ इससे पहले तो पुलिस अफसर घोड़ेसे उतर गया था। उसने टोपी उतारकर वर्दीके बटन उन्मुक्त किये और पू.गुरुदेवके चरणोंमें झुक गया।

तीसरे अध्यायमें

देखें -- संसारसागरमें असंख्य विपदायें जीवको घेरे रखती हैं। उन विपत्तियोंसे जीव घबड़ा जाता है। कोई ओर-छोर नहीं, सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार, सहयोग और प्रकाशकी दूर-दूरतक कहीं कोई क्षीण-सी रेखा भी नहीं। जीव उसका निस्तार चाहता है। क्या कोई उसका अमोघ उपाय सम्भव है ? भगवन्नाम-संकीर्त्तन अथवा जपका आश्रय लो, सम्पूर्ण विपत्तियोंका सदाके लिये समूल विनाश हो जायेगा।

चतुर्थ अध्यायमें

अवगाहन करें -- श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे कि आज मेरी दीक्षा हो गयी। सन्त कबीरदासजीकी दीक्षा भी तो इसी प्रकार हुई थी।श्रीकृष्णचन्द्रजीके पोद्दार महाराजके धर्मपुत्र होनेके एवं श्वेतवस्त्रोंमें संन्यासीवत् जीवन व्यतीत करनेके कुछ विलक्षण कृपाप्रसंग।

पाँचवें अध्यायमें

देखिये -- *रासलीलाकी महाभावमयी सत्य अनुभूतियाँ जिनमें पोद्दार महाराज एवं प.गुरुदेव श्रीराधाबाबा अनवरत अनेक दिनोंतक आपाततः निमज्जन करते रहे।*

छठे अध्यायमें

अवलोकन करें -- *उस अनुष्ठानका जीवन्त वर्णन जिसके द्वारा पू. पोद्दार महाराजकी बीस वर्षकी आयुवृद्धि हुई ।*

सातवें अध्यायमें

देखें ---*प्रयागकुम्भमें नावमें मात्र एक गीतपंक्तिके गुनगुनानेसे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको हुआ विलक्षण उद्दीपन, सिद्धजगत्का सन्देश।*

आठवें अध्यायमें

अनुशीलन करें --*पू.पोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके सम्मुख तीर्थयात्रामें साक्षात् भगवद्विग्रहोंके प्राकट्यके प्रसंग, काशीमें बिन्दुभाधवतीर्थ, गोपालमन्दिर एवं भगवती विशालाक्षी मन्दिरमें चमत्कार, अन्नपूर्णामन्दिरमें साक्षात् भगवतीके दर्शन। चित्रकूटमें मन्दाकिनी घाट एवं कामदगिरिपर चिन्मय चित्रकूटका प्राकट्य। अयोध्यामें सीताजी एवं उर्मिलाजीके दर्शन। हरद्वारमें गंगाजीका प्रत्यक्ष दर्शन। मथुरा एवं ब्रजयात्रामें दिव्यानुभव। महासिद्धसन्त मोहिनीश्यामजीके विवरण। उज्जैनमें पूर्वजन्मोंकी स्मृति। चित्तौड़में श्रीकृष्णसे हठ । कृपावतार श्रीनाथजीकी झाँकी। काँकरोलीमें भक्तराज अम्बरीषके दर्शन। सिद्धपुरमें भगवान् कपिल एवं माता देवहूतिकी झाँकी, कर्दमऋषिका विन्दुसरोवरमें साक्षात्कार । द्वारका, जूनागढ़, डाकोर, पञ्चवटी, पंढ़रपुर, तिरुपति, जम्बुकेश्वर, श्रीविल्लीपुत्तूर आदि सभी तीर्थोंमें जीवन्त चमत्कारिक अनुभवों के विवरण।*

नौवें अध्यायमें

पू.गुरुदेव राधाबाबाके काष्ठमौनका हृदयद्रावक प्रसंग ।

आत्मकथ्य

नृसिंह जयन्ती, वि.सं.२०५४
तदनुसार मंगलवार,दिनांक २०।५।१९९७ ई०

प्राणवल्लभ परमप्रेष्ठ प्रियतम रससागर ब्रजेन्द्रनन्दनके चरणोंमें कृतज्ञताके अश्रु ढलकाता यह **महाभाव–दिनमणि श्रीराधाबाबा** – नामक पू.गुरुदेवकी जीवनीका **चतुर्थ खण्ड** समर्पित कर रहा हूँ। चिन्मय सरस कालिन्दीके श्यामल जलसे भरा – **महाभाव–दिनमणि श्रीराधाबाबा** –जीवनीका **प्रथम खण्ड**, गंगाकी मुक्तिदायिनी पुण्यधाराके तुल्य पू.गुरुदेवकी ज्ञानोत्तर विशुद्ध भक्तिमें सराबोर उनके सैकड़ों अलभ्य पत्रोंका संग्रह – **महाभाव दिनमणि श्रीराधाबाबा** – उनकी जीवनीका **दूसरा खण्ड** और यह सरस्वतीके समान पूर्णतया गोपन रस–रहस्योंका प्रकाश करता –**महाभाव दिनमणि श्रीराधा बाबा** – पू.गुरुदेवकी जीवनीका **तीसरा खण्ड** जिस समय सन् १९४९ ई. से लेकर १९५६ ई.तकके उनके सात वर्षोंके रस–साधनाकालकी विलक्षण पारमार्थिक उपलब्धियोंका जीवन्त चित्रण है। इस त्रिवेणीकी पथयात्राके लक्ष्य तो हे प्राणाधिक ! आपके रस–सिन्धु चरण ही हैं, अतः इसे आपके चरणोंमें ही स्वीकार करलें।

वल्लभ ! इस पुण्यक्षेत्र भारतमें सप्त गंगायें भी तो प्रसिद्ध हैं। अभी तो गंगा–यमुना–सरस्वती इस त्रिवेणी तक ही पहुँच पाया हूँ। सरयू, नर्मदा, गोमती एवं गोदावरी – इन चारों पुण्यसलिलाओंमें अवगाहन तो अभी शेष ही है। ऐसा लगता है पू.गुरुदेवके भी जीवनचरित्रके सप्त मुख्य खण्ड एवं अनेकों उपखण्ड लिखे जावें, ऐसा भगवद्विधान है। यह प्रयास चाहे इस नश्वर शरीरके द्वारा करानेका प्रभु सौभाग्य दें अथवा वे अपना अन्य कोई यन्त्र चयनित करें – सब उनकी अनन्त कृपायोजनाके अन्तर्गत है। पू. गुरुदेवके स्वरचित एक सौ आठ चौपदोंपर तो कार्य प्रारम्भ हो गया है। विचार तो इस सामग्रीको इसी खण्डके साथमें जोड़कर इस खण्डका कलेवर लगभग हजार पृष्ठोंका करनेका था परन्तु जीवनका कोई भरोसा नहीं, शीघ्रतामें जो पुण्यकार्य सम्पन्न हो जाय उसे पूरा कर दूँ , ऐसा मानकर लगभग पाँच सौ पृष्ठोंकी यह सामग्री तो पाठकवर्गके सम्मुख है ही,

अवशिष्ट कार्यमें जुट गया हूँ।

दूषित कर्मोंको क्षय करने इस वर्ष प्रभु भीषण रोग बनकर दर्शन देने पधारे । मेरे कष्टोंपर तनिक ध्यान नहीं देते हुए उन्होंने अपना निरंकुश स्वच्छता–कृपाभियान चलाये रखा । कभी–कभी तो ऐसा लगता था कि वे कलेवर ही बदलनेका मानस बना लिये हैं । जीवका दूषित कर्मोंसे गन्दा होते रहना तो हस्तिस्नानवत् स्वभाव ही है। हाथी नदीमें खूब मनोयोगपूर्वक स्नान करता है, उसका घण्टों जलविहार चलता है, किन्तु जैसे ही विहारोपरान्त वह बाहर आता है, उसका पुन: अपने ऊपर कीचड़ और रज डालनेका तामस कर्म प्रारम्भ हो जाता है। मेरी भी ऐसी ही दशा है। पू. गुरुदेवके पावन चरित्रोंमें अनेकों घण्टों रमण करता हूँ, किन्तु पुन: जगत्पंकमें लिप्त हो ही जाता हूँ। अत: कृपाविधान करने हेतु प्रभु पीड़ारूप धारणकर पधारे । निरन्तर पिछले छ: द्रवसे मस्तिष्कतक जलमें सराबोर किये रखना, मात्र जल पीनेसे ही अल्सरकी पीड़ा, रात्रिभर श्वासावरोधसे निद्रा नहीं लेने देना, बैठे–बैठे रात्रि व्यतीत कराना, फेफडोंमें से श्वासमार्गमें रक्तके थक्के जमाना – ऐसे कष्टोंमें पूर्ववर्ती चार माहका कालक्षेप हुआ । यह पवित्र कार्य बार–बार प्रारम्भ करनेका साहस जुटाता पर असफल ही रहता। ऐसे कष्टोंमें मनुष्य स्नेही आत्मीयजनोंके सेवा–सहयोगकी अपेक्षा करता ही है परन्तु अपने–से–अपने जनोंका भी किनारा कर लेना, सभी कोनोंसे प्रभुने ऐसा व्यवहार दिखाया कि जगत्का पूरा स्वरूप ही उजागर हो गया। विश्वमें क्या सभी पराये हैं ? सभी क्या दिखावेके मुखौटा लगाये हैं ? इस कठोर सत्यके थपेड़े खाता प्रवाह–पतितकी तरह जहाँ सींग समाये, भटकता रहा। अन्तत: प्रभुसे दयाकी याचना की । ''इन विलक्षण प्रेमीयुगल – श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके जीवन–चरित्र लिखनेकी इस मेरी वासनाके पूरी होने तककी अवधिके लिये श्वास–कष्ट निवारण कर दीजिये न !'' श्रीकबीरदासजीकी उक्ति तो हम सभीको स्मरण है ही –**'चींटीके पग नेवर बाजै , ताकौ साईं सुनता है।''** प्रभुके द्वारा प्रार्थना सुन ली गयी। प्रभु एक डाक्टरका रूप लेकर इलाजको तत्पर हो गये। क्या ही लीला है –स्वयं ही रोग बनें और स्वयं ही उसे दूर करनेका संकल्प करें ! एक अकिंचन भिक्षुके इलाजके लिये, जिससे एक फूटी कौड़ी प्राप्त करनेकी आशा नहीं, इतना आदरसहित उत्साह और वह भी एक ऐसे डाक्टरका जिससे पूर्वमें पहले कभी सम्पर्क नहीं हो, और जिसकी मात्र एक

घण्टेकी आय हजारों रुपयोंमें हो, एक चमत्कार ही था। जहाँ अपने लोग मुख मोड़ लें, पराये–अनजाने कण्ठ लगावें – कैसा विलक्षण विधान प्रभुने बनाया था ? सारे रोगोंकी – मधुमेहसे लेकर फेफडोंकी आन्तरिक क्रिया, किडनी, लीवर एवं हृदयकी धड़कनतककी सूक्ष्मतम जाँच, हृदयके आकार–वृद्धिकी एवं उसके द्वारा फेफडोंपर पड़नेवाले दबावकी सभी जाँचें डाक्टर–प्रभुने अपनी निगरानीमें अपने अति विश्वस्त लोगोंसे करायी। रिपोर्टें लेकर डाक्टर महोदय स्वयं अपने विश्वस्त मित्र कार्डियोलोजिस्टके पास अहमदाबाद गये और तब पता चला कि हृदयका बायाँ वर्टिकल वाल्व खराब हो गया है, उसे बदलना आवश्यक है। अब डाक्टर महोदय बाल्व बदले जानेके समय स्वयं उपस्थित रहनेका आश्वासन दें, व्यय नि:शुल्क करवा देनेका उत्साह प्रदर्शित करें – यह सब बात प्रभु–कृपाके अतिरिक्त कुछ भी समझमें नहीं आई । प्रभु–कृपाके सहित विरुद्धगुणधर्माश्रयी स्वभावको देख–देखकर मैं चकित था।

इतना सब देखते हुए भी आपरेशन नहीं कराया। इस नश्वर शरीरके लिये किसी अनजान व्यक्तिका इतना सेवा–ऋणबोझ लेनेका मन ही नहीं हुआ। अपने पास तो ऐसी पुण्यराशि भी नहीं जिससे उस अनजान डाक्टरका सेवा–ऋण उतार पाता । अत: बस, बिना आपरेशन, मात्र दवाका सहारा लिया और प्रभु–कृपासे दवा द्वारा ही श्वासावरोध मिटता गया। और अब तो केवल अल्सर एवं पित्तरसका उद्रिक्त हो उठना ही अवश्य कष्ट देता है, शेष, हृदय सम्बन्धी सभी कष्ट–धड़कन अत्यधिक हो उठना , रक्तचाप बढ़ जाना, नाकसे रक्तके कण निकलना – स्वत: सब सामान्य हैं।

इस सब कष्टमें चार माह व्यय हो जानेसे जितनी सामग्री लिखी जानी चाहिये थी लिखी नहीं जा सकी है। वैसे अभी दो माह शेष हैं। यदि स्वास्थ्य सामान्य रहा और प्रभुने लेखनीमें गति दे दी तो पू.गुरुदेव रचित चौपदोंकी विस्तृत भावानुवाद सहित व्याख्या पाँचवें खण्डके रूपमें प्रकाशित कर देनेका पूरा मन है।

इस ग्रन्थमें सामग्री चालीससे पचास वर्ष पुरानी है। उन दिनोंके विवरणोंका मेरे पास कोई लिखित संकलन तो था ही नहीं, फिर भी प्रभुकृपाका आश्रय लेकर लिखनेका साहस कर बैठा। रासलीलाके सब प्रसंग सन् १९४९ ई.के हैं। किन्तु प्रभु अक्षरश: एक–एक घटनाका जीवन्त चित्र वर्तमानके तुल्य नेत्रोंके समक्ष प्रत्यक्ष करते चले गये। अनेक विस्मृत घटनाएँ

तो प्रभुने स्वप्नमें स्मृति करायीं । भाषा–संरचनामें भी मैं तो पूर्णतया अनभ्यस्त हूँ। किन्तु लीला एवं घटनाचक्रके यथानुरूप प्रभुकी कृपा भाषारूपमें ढलती गयी और यन्त्रावत् मेरी कलम चलती गयी।

प्रभुनें सब प्रकारसे हीन, असमर्थ, रोगी व्यक्तिको इस अपने स्वरूपगत पावन चरित्रको लिखनेका यह सौभाग्य दिया, इसके लिये प्रभुका रोम–रोमसे कृतज्ञ हूँ।

मैं श्रीराजेन्द्रप्रसादजी स्वामी, स्वामी कम्प्यूटर्स, बीकानेरका बहुत आभारी हूँ जिन्होंने प्रभुकृपासे हमें कम्प्यूटरमुद्रणमें मार्गदर्शन एवं सहयोग किया जिनसे यह सामग्री समयबद्धरीतिसे मुद्रण हो सकी।

जिन लोगोंने भी इस कार्यमें सहयोग दिया है वे सभी प्रभुकार्यमें यंत्र हुए हैं। उनका यह सहयोगकार्य परममंगलकारी होगा इसमें तो कोई संशय है ही नहीं। मैं तो उनके इस सहयोगको अपने ऊपर हुआ परम अनुग्रह ही मानता हूँ।

पर्याप्त सावधानी रखने के उपरान्त भी भूलें रह जाना अवश्य संभाव्य है। सुधी पाठकोंसे निवेदन है कि वे इनका हमें इंगित करें जिससे उनका परिष्कार किया जा सके। स्खलन तो जीवगत दौर्बल्य है ही, किन्तु रसिकजन उसे उपेक्षणीय ही गिनते हैं। आस्वादनीय तो भगवदीयजनका रसमय चरित्र ही है जिसमें मात्र रस–ही–रस है, छिलका, गुठली आदि निःसार वस्तु है ही नहीं।

किमधिकम् सुविज्ञेषु,

भक्तोंकी चरणरेणु,
साधु कृष्णप्रेम

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

चतुर्थ खण्ड

(रासलीला-दर्शन तथा तीर्थयात्राके अनुभव एवं काष्ठमौन)

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ सं.
प्रथम अध्यायः	
सन्तसमर्पणतत्व एवं सेठजी श्रीजयदयालजी गोयनकाकी महिमा	१
दूसरा अध्याय	
सात्त्विक शौर्य	२१
तीसरा अध्याय	
भगवन्नाम–संकीर्त्तनसे समग्र विपत्तियोंका निरसन	२४
चौथा अध्याय	
श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालको पू.गुरुदेव द्वारा आत्म-प्रतिनिधित्वका दान	३४
पाँचवाँ अध्याय	
रासलीलाओंमें अनुभूतियाँः	
१. गोचारणलीलाका उन्मेष और भगवदादेश	४५
२. भगवदादेशका अभिव्यक्तीकरण	४७.
३. अनवरत कृपावर्षण	५४
४. पू.गुरुदेवकी शय्यापर अपूर्व चिन्मय सज्जा	५८
५. सबसे पहले आप मेरे कपोलपर चपत लगावें	६५
६. वनचारणलीला और अधरामृतरसका वितरण	७२
७. श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकासे मतवैभिन्य	८९
८. रासमण्डलीका पुनः आगमन	१०१

क्रमांक	विषय	पृष्ठ सं.
	९. गुणीजन लीला	१०३
	१०. वेणीगूँथन लीला	१२६
छठा अध्याय	देवाराधना द्वारा पू.पोद्दार महाराजकी बीस वर्षकी आयुवृद्धि	१४६
सातवाँ अध्याय	प्रयागमें कुम्भमेला, पू.गुरुदेवको नावमें उद्दीपन, सिद्धजगत्‌का सन्देश	१५६
आठवाँ अध्याय	१. तीर्थयात्रा प्रस्थान	१६५
	२. पू.गुरुदेव द्वारा काशीका महिमावर्णन	१६७
	३. बिन्दुमाधवतीर्थके पुजारीको उपदेश	१७४
	४. गोपालमन्दिरमें चमत्कारिक बालगोपालके दर्शन	१७६
	५. भगवती विशालाक्षीमन्दिरमें कृपा चमत्कार	१८०
	६. अन्नपूर्णा मन्दिरमें भगवतीके साक्षात् दर्शन	१८४
	७. चित्रकूटमें विचित्र अनुभव	१९०
	८. प्रयागमें तीर्थयात्राट्रेन	१९७
	९. अयोध्यामें जगज्जननी माँ सीताजीकी कृपा	२०६
	१०. अयोध्यासे नैमिषारण्य	२१४
	११. हरिद्वारमें भगवती गंगाजीके दर्शन	२१६
	१२. कुरुक्षेत्रकी महिमा	२२६
	१३. दिल्लीमें सन्त सरमदकी मजारपर	२२८
	१४. मथुरा तथा ब्रजयात्राके दिव्यानुभव	२३१
	१५. महासिद्धसन्त मोहिनीश्यामजी	२३८
	१६.उज्जैनमें महाकालके दर्शन एवं पूर्वजन्मकीस्मृति	२४९
	१७.ॐकारेश्वरमें सीतारामदास ॐकारनाथजीसे मिलन	२५४
	१८.उदयपुर एवं चित्तोड़में पू.गुरुदेव	२५७
	१९.कृपावतार श्रीनाथजी	२६३
	२०.काँकरोलीके द्वारकाधीश	२७०
	२१.श्रीनाथजीके मंगलादर्शन	२७३
	२२.पुष्करतीर्थमें	२७४
	२३. आदितीर्थ धर्मारण्य सिद्धपुरमें भगवान् कपिलके दर्शन	२७८
	२४.द्वारकाधाममें	२८१
	२५.बेटद्वारकामें पू.गुरुदेव	२८३

क्रमांक	विषय	पृष्ठ सं.

२६. जूनागढ गिरनार पर्वतमें २८६
२७. डाकोरके रणछोड़राय २९०
२८.बम्बईमें तीर्थयात्राट्रेन २९३
२९ बम्बई से नासिक (पञ्चवटी) ३०५
३० पण्ढ़रपुर ३०८
३१. किष्किन्धामें ३१२
३२. कालहस्ती ३१३
३३. तिरुपतिबालाजी ३१८
३४. रमणाश्रममें ३२५
३५. श्रीरंगक्षेत्रमें ३३१
३६. जम्बुकेश्वरमें तेजोद्दीप्त भगवती जगदम्बाका दर्शन ३३७
३७. श्रीविल्लीपुत्तूरमें भगवती गोदासे तादात्म्य ३३९
३८ श्रीआद्यशंकराचार्यकी जन्मस्थली कालड़ीमें ३४५
३९. कन्याकुमारीमें रसोद्दीपन ३४६
४०. भगवती मीनाक्षीकी साक्षीमें सभी
यात्रियोंका आध्यात्मिक संशुद्धीकरण ३५३
४१. भगवती सीताजीकी अग्निपरीक्षाके दर्शनः रामेश्वरमें ३६०
४२. वेदारण्यकी प्रलयमें पू.गुरुदेवको भावोल्लास ३६३
४३. चिदम्बरम्में भगवान् शिवके साक्षात् दर्शन ३६५
४४. पाण्डिचेरीमें 'माताजी'से वार्त्तालाप ३६८
४५. मद्रासमें श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीका अर्चन ३७०
४६. भक्तिमती चिन्मयीदेवीके वृत्तान्तसे भावावेश ३७१
४७. नीलाचलमें महाभावावेश ३७५
४८. तीर्थयात्राका प्रयोजन–साफल्य ३८७

नवम अध्याय

१. पू.गुरुदेवका काष्ठमौन ३९३
२. पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके काष्ठमौनका प्रयोजन ३९९
३. पूजा–विसर्जन ४०४
४. उन्मुक्तहस्त श्रीकृष्णवितरण ४२९
५. कृपासिन्धुकी उर्मियोंमें उद्दाम नर्त्तन– ४४५
६. सम्प्लावन ही सम्प्लावन ४५४

प्रकाशकीय वक्तव्य

भगवान श्रीराधा-माधवकी असीम कृपाका यह प्रत्यक्ष चमत्कार हैं कि ***महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा*** नामक पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी जीवनीका यह **चतुर्थ खण्ड** प्रकाशित होकर राधा-परिवारके सम्मुख है। य़द्यपि हमारा इसी ग्रन्थमें पू. गुरुदेवके अप्रकाशित काव्य-संग्रह-चौपदोंको विस्तृत भावार्थ सहित देनेका मन था, किन्तु भावार्थ-लेखनके मध्य ही लेखकका शरीर हृदयाघातकी बीमारीसे आक्रान्त हो गया। स्वास्थ्यजनित अवशतासे इस अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यसे मध्यमें ही निवृत्त होना पड़ा और तबसे अनवरत पुनः-पुनः कार्य-प्रारम्भ करनेकी इच्छा रखनेपर भी हाथोंके कम्पन और मस्तिष्ककी बेचैनीसे यह कार्य आजतक तो प्रारम्भ नहीं हो पाया। सन्तोष इसी बातका है कि इस रुग्णताके पूर्व ही चतुर्थ खण्डकी ५०० पृष्ठकी सामग्री प्रेसमें देने लायक हो गई थी। यह सामग्री स्वयंमें भी इतनी महत्वपूर्ण है आैर इसमें पू.गुरुदेव एवं पू.पोद्दार महाराजके प्राथमिक रासलीलादर्शन और तीर्थयात्रा-प्रसंगोंका ऐसा रहस्योद्घाटक और रोचक वर्णन है कि पाठक इन्हें पढ़कर अवश्यमेव कृतकृत्य हो उठेंगे । उन्हें पू. श्रीपोद्दार महाराज एवं पू. श्रीगुरुदेवके अति गरिमामय आध्यात्मिक जीवनके मौलिक रहस्योंका परिचय प्राप्त होगा। यदि प्रभुने कृपावश स्वास्थ्य प्रदान किया तो आगामी **पाँचवें खण्डमें** पू. गुरुदेवका उपलब्ध काव्य एवं नाटक-संग्रह एक साथ प्रकाशित करनेका मन है ।

यह अप्रकाशित दुर्लभ काव्य एवं नाटक-संग्रह इतना भाव-शब्द-दुरूह और रस साहित्यगुणोंसे भरपूर है कि इसकी गरिमाका आकलन हिन्दी साहित्यके मूर्धन्य विद्वज्जन ही कर पावेंगे । निश्चय ही वे इसमें महाकवि सूरदासादिकी कोटिका एवं कहीं-कहीं उससे भी उत्तम रस पाकर चमत्कृत हो उठेंगे । इस ग्रन्थको जिसमें कुछ रसमय नाटक भी हैं संभव है दो खण्डोंमें प्रकाशित किया जा सके । इसमें सुबोध भावार्थ भी देने की

योजना है । यह सम्पूर्ण ग्रन्थ बहुमूल्य आर्ट पेपरपर छपानेका प्रयास होगा और इसकी छपाई उत्तम कोटिकी होगी । इसमें राधाकृष्णकी लीलाओंके पू. राधाबाबाके यथा-भाव चित्र भी संयुक्त करनेका मन है। इस प्रकार यह ग्रन्थ सज्जाकी दृष्टिसे बहुत ही आकर्षक, उपादेय तथा संग्रहणीय होगा । वर्तमानमें इस खण्डमें इन पदोंमें से दो पद अर्थ सहित नमूनेके रूपमें दिये जा रहे हैं। इन पदोंको पढ़कर पू. गुरुदेवके काव्यसाहित्यकी झाँकी पाकर निश्चय ही पाठक कृतकृत्य हो उठेंगे । आगामी प्रकाशनमें तीन-चार लाख रुपयों तक का व्यय होनेकी संभावना है। अनेक चित्र तो पदोंके भावानुसार बनवाने भी पड़ सकते हैं । आजकल चित्रों को बनवानेके लिए जयपुरसे कलाकारों को बुलवाकर प्रति चित्र ५०००/- रु. तक देना पड़ जाता है । इस मंहगाईका कारण विदेशी यात्रियोंकी पुरातन दुर्लभ चित्रोंकी प्रतिलिपि करानेकी अत्यधिक माँग होना है । जो हो, ग्राहकोंसे निवेदन है कि इस ग्रन्थकी अग्रिम बुकिंग करानेके लिए कृपया अपना नाम एवं पता संलग्न कार्डमें लिख भेजें जिससे हम माँगके अनुसारही इस ग्रंथका प्रकाशन कर सकें। हमारे पते सहित छपा कार्ड इस चतुर्थखण्डमें संलग्न मिल जायेगा । आशा है ग्राहकोंका सहयोग पाकर हम उनकी सेवासे निश्चित ही कृतार्थता प्राप्त करेंगे, ऐसी प्रभुसे प्रार्थना है।

विनीत -

साधुकृष्णप्रेम

झूलन के पद

॥१॥

झूलत लालबिहारी, प्यारी।

द्रुम कदंब कन-कन भासित छबि

पीत अतुल हरियारी ॥१॥

फूल-फूल, तरु पात-पात ज्यौं

द्वै दरपन दुतिधारी।

झोंटा देत परसपर इंगित

करत आपु मतिहारी ॥२॥

ऐसिय अरुन कंचुकी देखिय,

ऐसिय लहरत सारी।

ऐसिय उपरैना पियरौ उड़ि

उरझि न जात निवारी ॥३॥

हम साँचे, कै वे जो झूलहिं,

कोउ न निरनयकारी।

'तुम, तुम' बोलि बतावन हारे

धन्य सुआ री। सारी ॥४॥

राधा

पद संख्या १

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाका जन्मनक्षत्रके अनुसार 'लालमणि' नामकरण हुआ था। प्रस्तुत पदोंमें प्रियतम श्रीकृष्णको कहीं-कहीं 'लाल' अथवा 'लालबिहारी' आदि नामोंसे वर्णित किया गया है जिससे कविके नामकी भी ध्वनि प्रकट होती है।

अहा! कैसे अनुपम दृश्य हैं! कैसी अनुपम शोभा है! नित्य विहार ही जिनका जीवन है, जीवन-चर्या है वे लालविहारी प्रियतम श्यामसुन्दर एवं नित्यविहारिणी किशोरी प्यारी श्रीराधा कदम्बवृक्षकी डालीपर पड़े झूलेपर झूल रहे हैं। श्रीवृन्दावनके उस दिव्य कदम्ब वृक्षकी शाखा-शाखा, टहनी-टहनी तथा पत्र-पत्र, यहाँ तक कि वृक्षके कण-कणमें प्रिया श्रीराधाके अंगोंकी पीली झाँई तथा प्रियतम श्रीकृष्णके अंगोंकी नीलद्युति तथा इन प्रेमीयुगलोंकी पीत एवं नील अंगोंकी द्युतिकी समन्वित छटा हरित आभाके रूपमें द्युतिमान हो रही है ॥१॥

यह दिव्य कदम्ब वृक्ष भी अलौकिक है। इसका प्रत्येक पुष्प एवं पत्ता-पत्ता उज्ज्वल दर्पणके समान चमकीली आभा धारण किये है, जिससे प्रिया-प्रियतमकी शोभा कण-कणमें प्रतिबिम्बित हो रही है। दोनों ही प्रिया-प्रियतममें स्वयं न झूलकर एक-दूसरेको झुलानेकी होड़-सी लगी है। वे इंगित करके एक-दूसरेको झोंटा देनेकी मनाही करते हैं तथा झूलेसे स्वयं उतरकर झोंटा देकर झुलाना चाह रहे हैं ॥२॥

लाल रंगकी चोली जो प्रियाने धारण की है अनुपम

शोभायान है। इसी भाँति प्रियाजीकी (नील) साड़ी जो झूलते-झुलाते समय लहरा रही है उसकी भी चमक अद्वितीय है। ऐसा ही प्यारे श्यामसुन्दरके अंगोंपर पीले रंगका अंग-वस्त्र उपरैना(पीताम्बर) है जो उड़-उड़कर प्रियाजीके अंगोंसे लिपट जा रहा है तथा छुड़ानेपर भी नहीं छूट पाता ॥३॥

श्रीवृन्दावनके निभृत निकुंजधामकी यह झूलन-लीला वहाँ स्थित परम सौभाग्यभरे दो प्राणी निरख रहे हैं -वे हैं निकुंजधामके बड़भागी शुक एवं सारिका। वे भी इस अनुपम लीलाछविको निहारकर अपनी आँखोंपर विश्वास ही नहीं कर पा रहे हैं। वे सोचते हैं कि सचमुच ही प्रियाप्रियतम झूला झूल रहे हैं कि यह हमारे नेत्रोंका भ्रममात्र ही है। यहाँ कोई तीसरा है भी नहीं जो इस बात का निर्णय करे कि कदम्बके वृक्षके कण-कणमें सचमुच ही अगणित राधाकृष्ण झूला झूल रहे हैं— यह बात सत्य है कि हमारी यह धारणा सत्य है कि प्रियाप्रियतम तो दो ही हैं, कदम्बवृक्षके दर्पण-सरीखे कलेवरमें उनके अगणित प्रतिबिम्ब ही हमें दिखाई दे रहे हैं।

अचानक दिव्य शुक एवं दिव्य सारिका बोल पड़ते हैं कि हे प्रिया-प्रियतम! तुम दो ही झूला झूल रहे हो तथा कदम्बवृक्षके कण-कणमें प्रतिभासित हमारे नेत्रोंके विषय तुम्हारी अगणित छवियाँ तुम्हारी प्रतिच्छायायें हैं, यही सत्य है। इस सनातन दिव्य शाश्वत सत्यकी 'तुम-तुम' शब्दोंसे घोषणा करने वाले शुक एवं सारिकाकी बलिहारी है। धन्य है वह महाभाग्यवान् शुक एवं महाभाग्यवती सारिका !॥४॥

राधा

॥२॥

झूलत लाल निकुंज-बिहारी।

प्रान-अधीसुरि सुंदरि राधा

निज कर रुचिर सिँगारी ॥१॥

नित्य बिहारिनि नील डोर गहि

पिंगल उत बनवारी।

मंद-मंद मुसकाइ मनोहर,

रीति बिलास बिसारी ॥२॥

निभृत बनस्थल, रबिनंदिनि जहँ

उमगत देत बुहारी।

पौन छुवत चल चंचल घाँघर

पीत दुकूल किनारी ॥३॥

बंकिम नैन हेरि दयिता-तन

तान समय-अनुहारी।

साँवर भरत जात, 'जय-जय' कहि

कीर-सारि बलिहारी ॥४॥

श्रीपोद्दार महाराज

पता नहीं कुछ रात-दिवसका, पता नहीं कब संध्या-भोर

महाभाव–दिनमणि श्रीराधाबाबा

(चतुर्थ–खण्ड)

प्रथम अध्याय

सन्त-समर्पण-तत्त्व एवं सेठजी श्रीजयदयालजी गोयनकाकी महिमा

उस दिवस राधाष्टमी महोत्सव था। बात सन् १९४९ई०की है। पू० श्रीराधाबाबा इस निशामें नियमतः जागरण किया करते थे। उन दिनों जन्माष्टमी-राधाष्टमी महोत्सव इतने बृहद् रूपमें तो नहीं होते थे, जैसे आज होते हैं, किन्तु पद-गायनादिमें ज्यों-की-त्यों आजकी ही परिपाटीका वर्त्तन होता था। बाह्यावेशी जनसमुदायके न होनेसे वातावरण अतिशय सात्विक रहता था। इन सभी उत्सवोंमें कीर्त्तन-बधाई, पद-गायनादिका उत्तरदायित्व मेरे पूर्वाश्रमके मातुल श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी निर्वाह करते थे और उद्दाम नाम-संकीर्त्तन, जो उन दिनोंके उत्सवोंका प्राण कहा जाता था – का नेतृत्व एवं संचालन पू० गुरुदेव श्रीराधाबाबा स्वयं किया करते थे। वह संकीर्त्तन इतना अधिक रसोच्छलन करता था कि उसे शब्दोंमें व्यक्त किया ही नहीं जा सकता। संकीर्त्तनमें सम्मिलित होनेवाले प्रायः अधिकांश लोगोंको न तो कालज्ञान रहता था और न ही देह-सुधि। यह उद्दाम नाम-वारिधि गरजता-उछलता तीन-साढ़े तीन घंटेके पूर्व विरमित नहीं होता था और इसके रसमें निपतित लोगोंको इसका विराम होना इतना कटु लगता था, जैसे उनको अपने जीवनरससे ही वंचित कर दिया गया हो। प्रायः स्वयं पोद्दार महाराज अपने सम्पादन-कक्षसे उत्सव-स्थलमें आकर ही, अतिकाल हुआ मान इसे विराम दिलाया करते थे। उनकी वह आशीर्वादसे भरी, अनुग्रह प्रवाहित करती छवि, उनके वे बिशुद्ध सत्वकी वर्षा करते नेत्र, जब संकीर्त्तन करते लोगोंको संकीर्त्तन-विरामका संकेत देते थे, उस समय अनेक बार तो रसोर्मियाँ इतनी उमड़ उठती थीं कि घण्टे-पौन घण्टेतक तो उस रस-स्रोतका रुकना असंभव ही लगता था। फिर जब स्वयं पू०गुरुदेव ही संकीर्त्तन-निवृत्त हो जाते और

विराम कर देते तब सहयोगी अनुसरणकर्त्ताओंको रुकना ही पड़ता था।

मेरे पूर्वाश्रमके मामाजीका कण्ठ इतना सुरीला था कि उनके द्वारा गाये गये बधाई और श्रीराधामहिमाके पदोंकी बन्दिश एवं स्वरमाधुरी सारे वातावरणको किसी अपूर्व रसमय लोकमें पहुँचा देती थी। मुझे हारमोनियम वाद्यमें साथ देकर मेरे मामाजीके अनुगत हो पदगायन भी करना होता था एवं पू०गुरुदेवके साथ भी ढोलक अथवा बंगाली मृदंग (खोल) बजाकर संकीर्त्तनमें सम्मिलित होना होता था । दिनभरका उपवास, फिर संकीर्त्तनमें निरन्तर अथक परिश्रम – सायंकाल पू०गुरुदेवकी भिक्षा(शाकाहार)में प्रसाद लेकर मैं इतना अधिक श्रान्त होगया था कि सोच रहा था, जाकर गहरी निद्रामें डूब जाऊँ। आगामी दूसरे दिवस भी तो दधिकर्दमोत्सव सम्पन्न करना था, और उसमें आजकी अपेक्षा भी अधिक उत्साह और श्रमपूर्वक योगदान करना था ही। कल भी इसी प्रकार पुनः उद्दाम संकीर्त्तन भी होना था और पदगायनादि भी सभी पूर्वक्रमसे ही होने थे । ऐसी ही प्रतिवर्षकी परम्परा थी, अस्तु।

मैं शयन करनेका उपक्रम कर ही रहा था कि पू०गुरुदेवका बुलावा आगया। पू०गुरुदेवका आदेश था कि आज निशापर्यन्त उनके साथ मुझे भी जागरण करना है । उनकी ऐसी रोमाञ्चकारी उत्प्रेरणा थी कि जहाँ-जहाँ भी राधाष्टमी महोत्सव मनाया जाता है, इस निशाकालमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधव स्वयं उस उत्सव-स्थलीका निरीक्षण करने पधारते हैं और जिन्हें इस निशामें भी जाग्रत्, सत्वपरायण एवं भजनरत पाते हैं, उनपर अपनी कृपादृष्टि एवं अनुग्रहकी वर्षा कर जाते हैं ।

पू०गुरुदेवके इस कथनके पश्चात् फिर शयनका तो प्रश्न ही नहीं था, फिर भी अतिशय श्रमसे हुई शारीरिक थकानसे नयनोंमें खुमारी आरही थी । पू०गुरुदेवने मुझे सर्वथा तमोगुणमुक्त रखनेके लिये ऐसा रोचक प्रसंग छेड़ दिया कि मैं पूर्ण समुत्सुक हो उठा । वे मौनव्रती थे, अतः अपनी स्लेटपट्टी पर लिखकर ही सभी वार्त्ता किया करते थे । वे लिखकर कहने लगे–"भैया ! आजकी इस परम पुनीत निशामें मैं तुम्हें महासिद्ध सन्तोंकी कृपाको अपने भीतर अवतरित करनेके ऐसे अतिशय सरल साधन बतलाऊँगा कि यदि तू इन साधनोंको अपनाकर सर्वोच्च कोटिके सन्तोंको अपना आत्म-समर्पण कर दे तो इसी क्षण तेरी पारमार्थिक स्थिति श्रीपोद्दार महाराजके समकक्ष होजाय।"

पू०गुरुदेवकी कहनेकी शैलीने मुझे इतना समुत्सुक कर दिया था कि मैं अतिशय जागरूक हुआ, दत्तचित्त होकर उनकी बात सुनने लगा ।

वे कहने लगे–"देख भैया ! चाहे कितना ही घना अन्धकार हो, घनघोर तमसाच्छन्न निशा हो, किन्तु रविकी प्रथम किरणके संस्पर्श होते ही क्षण भी नहीं लगता, पलक झपकते ही समग्र अन्धकार विनष्ट हो जाता है । अतः बस, तू अपना पूर्ण आत्मसमर्पण किसी भी सच्चे सिद्ध सन्तको कर दे, इसी क्षण तेरे जीवनमें ऐसा रस-संप्लावन होगा कि उस महासिद्ध सन्तसे तेरा एकात्म मिलन हो जायगा और जो वे हैं, जैसे वे हैं, इसी पल तू भी वही और वैसा ही हो जायगा । तुझमें और उन महासिद्ध सन्तमें कहीं, कोई, किसी भी प्रकारका लेश मात्र भी अन्तर नहीं रह पावेगा । "

पू०गुरुदेव कह रहे थे–" भैया ! देवमणि पारसका एक लघु-सा खण्ड मात्र यदि लोहेके विराट-से-विराट आगारसे संस्पर्शित करा दिया जाय, लोहेकी सर्वदेशमें विस्तृत रेललाइनसे भी उसका संस्पर्श हो जाय तो समग्र लोहा एक क्षणमें मूल्यवान् स्वर्णमें परिवर्तित हो सकता है ; उस देवमणि पारसमें भी यह सामर्थ्य नहीं है कि संस्पर्शित होने वाले लोहखण्डको वह अपने समान पारस बना सके । किन्तु सन्त अपनेसे जुड़े पापी-से-पापी, दुराचारी-से-दुराचारीको भी त्रिजगन्मंगलकारी संत बनानेमें पल भर भी विलम्ब नहीं करते और इस प्रकार वे सन्तत्वकी परम्परा निर्माणकर, अनादि, अनन्तकाल तक भगवत्प्रीति की गंगा प्रवाहित करते रहते हैं। इस प्रकार यह सन्तत्वकी धारा इस त्रिलोकीमें अक्षुण्ण, निर्बाध, सतत प्रवाहित रहती है, कभी भी सूख नहीं पाती । "

"भैया ! सच मान लेना, लोक-परलोकके कल्याणके लिये ऐसे सन्तोंके समान परोपकारी कोई नहीं है। जीवके लिये सन्त-मिलन जन्म-जन्मान्तरोंका शुभ फलोदय है । ऐसे महासिद्ध सन्तोंका सेवन, आज्ञापालन ही जीवका सबसे बड़ा सदाचार है । इन सन्तोंकी रुचिपर अपना सर्वस्व बलिदान करना ही जीवकी सबसे बड़ी महत् धर्म-साधना है। इन सन्तोंकी कृपा ही ज्ञान, भक्ति एवं प्रेमानुराग प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है । "

पू० गुरुदेवका वक्तव्य चल ही रहा था कि इतनेमें मैंने देखा कि मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी भी मन्द-मन्थर गतिसे चलते हुए हमारी ही ओर आ रहे हैं । उनके आगमनसे तो पू०गुरुदेवके रस एवं उत्साहमें

जैसे उच्छलन आ गया ।

श्रीगोस्वामीजी भी निशा-जागरणार्थ ही पू०गुरुदेवके पार्श्वमें आये थे। अब तो पू०गुरुदेवके सम्बोधनका लक्ष्य मैं न होकर मेरे मामाजी श्रीगोस्वामीजी ही हो गये थे ।

पू० गुरुदेवका वक्तव्य अग्रसर हो उठा –"गोस्वामीजी ! अभी मैं महासिद्ध सन्तोंकी महिमा इस बालकको श्रवणगोचर करवा रहा था कि आपका आगमन हो गया। आज इस परम पावन निशा-जागरणके क्षणोंमें मैं आपको सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका महाप्रभुके अमोघ कृपावात्सल्य-प्रवाहके कुछ प्रसंग सुनाऊँगा। ऐसे अनेक अनुभव मुझे हुए हैं, जहाँ इनमें अकर्त्तुम्-सामर्थ्यका प्रकाश हुआ है। श्रीपोद्दार महाराज अब तो महाभाव-सिन्धुमें लहरा रहे हैं, परन्तु जिन दिनों श्रीपोद्दार महाराज विशुद्ध जीव-लीला कर रहे थे, उन दिनों उन्हें किस प्रकार अपनी अमोघ कृपाशक्तिसे सेठजी गोयन्दकाजीने घेरकर परमार्थ-तटपर खड़ा किया और हरहराते ज्ञानरस और भक्तिरसके संप्लावनसे आप्यायित किया, ये सत्य तथ्य आज आपके सम्मुख इसीलिये प्रकाशित कर दे रहा हूँ कि कहीं मेरे अतिरिक्त इनको जाननेवाला एक साक्षी व्यक्ति तो और हो जावे। '

"गोस्वामीजी ! आपको मेरी बात सुनकर समाश्चर्य होगा, किन्तु मेरी बात सौ-टंच खरी है। श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका प्रभु ज्ञानी संत हैं, किन्तु इनकी ब्रह्मसे एकात्मता जीव-ब्रह्मके अभेदज्ञानके समान अद्वैतपरक नहीं है । यद्यपि मैं इन्हें ज्ञानकी चतुर्थ भूमिकामें प्रतिष्ठित एवं पाँचवीं भूमिकाको संस्पर्श करनेवाला दुर्लभ महात्मा मानता हूँ, परन्तु ये ऐसे प्रेमी सन्त हैं, जो भगवान्से लेशात्मक पृथक्ता रखते हुए भी उनसे नित्य एकात्म भी हैं। श्रीसेठजीके द्वारा भगवान् नारायणके रसास्वादन और चिन्मय विलासमें क्योंकि स्वसुख भावका लेश भी नहीं है, अतः ये अपने इष्ट भगवान्के हाथोंके पूर्णतया खिलौना बने हैं । इसीलिये इनकी भगवान्से तात्त्विक एकात्मता अक्षुण्ण बनी रहती है। भगवान् और सेठजीमें परस्पर एक दूसरेके सुखमें सुखी होनेकी समचित्त सत्ता है, अतः कोई पृथ्कता है भी नहीं । इस प्रकार ये भगवान् नारायणमें सने-पगे रहते हैं ।"

"ये महाप्रभु सेठजी शान्तरसके अगाध वारिधि हैं, जैसे ही कोई अधिकारी-अनधिकारी जीव इनके सम्पर्कमें आता है, दृष्टिपात मात्रसे ये अपने

शान्तरस भावके बीज उसमें वपन कर देते हैं । इन सन्तोंमें त्रिगुणात्मक शरीरधारी होनेसे भले ही हमें रक्त प्रवाहित होता दीखे, किन्तु इनके आन्तरिक जीवनमें परमात्मा ही परमात्मा प्रवाहित होता रहता है, इनका किसी भी जीवकी ओर देखना, उसे संस्पर्श करना, उससे बोलना, सम्पूर्ण व्यवहार ही भगवन्मय, भगवन्नियन्त्रित होता है । अतः इनको स्पर्शकर बहनेवाली वायु भी भगवद्बीज-वितरणकारिणी होती है ।"

"हाँ, उस बीजका पल्लवन, उसका कुसुमित होना, साथ ही फलान्वित होना तभी संभव होता है, जब कोई महाभाग्यवान् संबीजित व्यक्ति ऐसे महापुरुषोंको अपना सर्वात्मसमर्पण कर देता है । इस पूर्ण समर्पणमें जितनी भी न्यूनता रहती है, उसके फलस्वरूप ही जीवका प्रथक् व्यक्तित्व उसे माया-जंजालमें उलझाये-फँसाये रखता है ।"

"गोस्वामीजी ! सच्ची बात यही है कि प्रथक् व्यक्तित्वका यह तट-बन्ध ही महासिद्ध सन्तोंके द्वारा निर्बाध, सतत प्रवाहित, चिन्मय रस-सम्प्लावनसे हमें शुष्क, अछूता एवं अस्पृश्य रखे है । यह तटबन्ध ऐसा अभेद्य अवरोधक है, जिसे जीव स्वयं ही मात्र अपनी स्वेच्छा, चाहसे तोड़ सकता है। क्योंकि यह अहम्मूलक तटबन्ध जीवको जैविक स्वाधीनताके रूपमें भगवत्प्रदत्त है। यह अहं जब एवं जिसका, जितना समर्पित होता है, उतनी ही इन सन्तोंकी कृपा-धारा उसे संप्लावित कर पाती है। "

" ऐसा नियम तो हम प्रकृतिमें भी सर्वत्र देखते हैं । हिमालयसे प्रवाहित अनन्त जलधाराएँ उसी भूमिकी ओर प्रवाहित होती हैं, जो नमित है। ऊँची भूमिके एक कणको तो वे संसिक्त भी नहीं कर पातीं । अतः इसे अटल अमोघ नियम ही मान लेना चाहिये कि भगवान्के पथमें अग्रसर होनेवाले साधकके लिये बढ़े हुए अहंकारसे बढ़कर दूसरा कोई प्रबल अवरोध नहीं है। इस भगवत्प्राप्तिरूप साधनामें सिद्ध सन्तोंको आत्मसमर्पण अवश्यंभावी है इसके सिवा इस साधनामें प्रवेशका दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। "

"गोस्वामीजी ! मेरी इस बातको निश्चय ही गाँठकी तरह बाँध लीजिये कि भगवत्प्राप्तिकी साधनाका प्रथम सोपान ही यह है कि महासिद्ध सन्तोंका दर्शन प्राप्त हो जाय, फिर किसी भी हेतुसे उनकी कृपा-निलय आत्मीयताके घेरेमें हमारा प्रवेश हो जाय, और तब उनके प्रति सर्वात्मसमर्पणकी प्रेरणा और योग्यता प्राप्त हो जाय। "

"गोस्वामीजी ! आज इस परम पवित्र निशाजागरणमें जब आप मेरे संग हो ही गये हैं, तो आपको मैं पोद्दार महाराजके जीवलीलाके उन प्रारंभिक साधनामय क्षणोंका चिन्तन-मनन कराता हूँ , जब श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका-रूपधारी साक्षात् भगवान् नारायणको उन्होंने अपना आत्मसमर्पण किया था। उस आत्मसमर्पणके कारण श्रीजयदयालजी महाप्रभुमें कृपा-वात्सल्यका ऐसा अथाह प्रवाह उमड़ उठा, जो श्रीपोद्दारजीके अभ्युदयका हेतु हो गया।

"गोस्वामीजी ! सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका-रूप महाप्रभु एक ऐसे मारवाड़ी बनिया संत हैं कि जिन्हें लोग सम्पर्कमें आकर भी ठीक प्रकारसे नहीं पहचान पाते । उनका रहन-सहन, वेषभूषा, मारवाड़ी-मिश्रित ठेठ ग्राम्य बोली – सब कुछ इतना साधारण गृहस्थोचित है कि लोग उन्हें निकटसे देख कर भी मात्र कुशल व्यापारी ही परिलक्षित कर पाते हैं, इन्हें सन्तके रूपमें मान्यता नहीं दे पाते । किन्तु वस्तुतः ये भक्तिमिश्रित ज्ञानके सूर्य हैं । इनपर ऐसी अद्‌भुत भगवत्कृपा है कि यदा-कदा सहज स्वाभाविक ही इनमें अकर्त्तुम् आध्यात्मिक सामर्थ्यका प्रकाश हो जाता है। परमात्माकी प्राप्तिके लिये जितने त्यागकी आवश्यकता होती है, उससे भी अधिक त्याग इनमें सहज है । "त्यागसे भगवत्प्राप्ति " नामक पुस्तिका इनके आन्तरिक त्यागकी ही प्रकाशिका समझनी चाहिये। इनका अपना न तो कोई काम है, न ही काम्य पद । ये केवल भगवान् नारायणको ही जानते हैं और अपने सहज समर्पण द्वारा सदैव उनके यंत्र बने उनसे ही संचालित होते रहते हैं । यही इनका आन्तरिक जीवन है। इनकी कृपा-सिन्धुके उद्वेलनका मैंने स्वयं अपने जीवनमें अनुभव किया है। इन्होंने अपने प्रथम परिचय और सत्संगमें ही मेरे माया-आवरणका समूल नाश कर दिया था। "

"कोई यह प्रश्न कर सकता है कि श्रीसेठजीके सम्पर्कमें तो सैकड़ों साधक आये हैं और घनश्यामदासजी जालान आदि अनेकों लोगोंने उन्हें पूर्ण जीवन ही सौंप दिया है, फिर वे सभी क्यों नहीं पूर्ण ज्ञानी हो गये, मात्र आप और श्रीपोद्दार महाराज आदि एक-दो व्यक्ति ही क्यों उनकी कृपा-वारिधिमें डूबे, तो इसका यही उत्तर है कि आत्मसमर्पणकी तरतमता ही इसमें मात्र हेतु है । शरीर-समर्पण कर देना एक बात है और आत्मसमर्पण भिन्न बात है । आत्मसमर्पणमें अहं पूर्णतया विगलित होकर जहाँ सन्तमें मिल जाता है , वहाँ मात्र शरीर और जीवन-समर्पणमें अहं ज्यों-का-त्यों बना रहता है । अध्यात्म

वस्तुका संप्रवाह मात्र आत्मसमर्पणमें ही संभव है। इसे पूरी तरह जान लेना चाहिये। ''

''श्रीपोद्दार महाराजको अध्यात्म पथप्रदर्शकके रूपमें ये श्रीसेठजी सन् १९१०–१९११ ई०में ही मिल गये थे। वस्तुतः भगवत्कृपा ही सन्तमिलनका प्रारब्ध संरचना करती है । जैसा मैंने श्रीपोद्दार महाराजके मुखसे सुना है श्रीसेठजीका इन्हीं दिनों कलकत्ते आगमन हुआ था और उनके सत्संगका आयोजन पगैयापट्टीमें पोद्दार महाराजकी दुकानके ठीक सामने ही श्रीहरिबक्शजी साँवलकाकी दुकानपर हुआ था । मात्र उत्सुकतावश पोद्दार महाराज इनके सत्संगमें गये थे । किन्तु प्रथम मिलनमें ही श्रीसेठजीके प्रेमिल स्वभाव, मौलिक चिन्तन, दम्भहीन अन्तःकरणने इन्हें बहुत ही प्रभावित कर लिया और इन्होंने उन्हें एक सच्चे सन्तके रूपमें मान्यता दे दी । ''

''उन दिनों श्रीपोद्दार महाराजकी भगवान्‌की माँग ही नहीं थी, उनकी रुचि ही सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधियोंमें पूरी उलझी थी। उनका कार्यक्षेत्र ही वैश्य-सभा, हिन्दू-क्लब, हिन्दी-साहित्य-परिषद, कन्या-पाठशालाएँ, मारवाड़ी-रिलीफ-सोसाइटी, कलकत्ता-हिन्दू-महासभा आदि संस्थाएँ थीं । उन दिनों स्वतंत्रता आन्दोलन चल रहा था, और बंगालके उग्रवादी वातावरणमें नवयुवक पोद्दार महाराज-जैसे संवेदनशील व्यक्तिके लिये उससे अपनेको असंपृक्त रखना असंभव था । उस समय उन्हें भगवान्‌की प्राप्तिके स्थानपर यह कार्यशीलता ही समयोचित प्रतीत हो रही थी। अतः ये इसमें पूरे रत थे।''

श्रीसेठजीने श्रीपोद्दार महाराजकी पारमार्थिक मूल भूमिकी उर्वरकताको पहचान लिया, और इनकी पूर्वजन्मकी परिपक्व साधन-सम्पन्नता भी परिलक्षित कर ली। किन्तु फिर भी उन-जैसे अतिशय शक्तिशाली संतको भी इस प्रापंचिक आवरणके कारण श्रीपोद्दार महाराजको पूर्णतया आत्मसात् कर लेनेमें पॉच-छः वर्ष लग गये। सच्चे महासिद्ध सन्तसे मिलन और उनसे हुई आत्मीयताका वस्तुगुण यद्यपि श्रीपोद्दार महाराजको बार-बार भगवद्‌भजनकी प्रेरणा देता था, किन्तु राजनीतिक और सामाजिक कार्योंकी रुचि उधर भटका ही देती थी । अन्ततः भगवत्कृपा और महासिद्ध सन्तका अनुग्रह उनपर क्रियाशील हो उठा । और भगवान् घोर विपत्तिके रूपमें श्रीपोद्दार महाराजके सम्मुख प्रकट हो गये । भगवान् श्रीमद्‌भागवतमें अपने श्रीमुखसे कहते हैं:–

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम् ।।
स यदा वितथोद्योगा निर्विण्णः स्याद्धनेहया
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम्।।
तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम् ।।
१०/८८/८–१०।।

"जिस जीवपर मैं कृपा करता हूँ , उसका सब धन धीरे-धीरे हर लेता हूँ । तब उसके बन्धुगण उसे निर्धन और दुःख-पर-दुःख उठाते देख छोड़ देते हैं । फिर जब बार-बार उद्योग करनेपर भी वह धन-संग्रह करनेमें समर्थ नहीं होता, तब धनकी चेष्टासे विरक्त होकर वह मेरे भक्तोंसे मेल करता है। उस समय मैं उसपर कृपा करता हूँ और तब उसे परम सूक्ष्म चिन्मात्र, सत्यस्वरूप, अनन्त ब्रह्मकी प्राप्ति होती है । "

"ठीक, इसी भगवद्वाक्यानुसार श्रीपोद्दार महाराज चतुर्दिक् विपत्तिरूप भगवदनुग्रहसे घिर गये। इनकी पैतृक सम्पत्ति तो शिलांगके भूकम्पमें १८९६ई. में ही नष्ट हो गयी थी। कलकत्तेके व्यापारसे जो कुछ प्राप्त होता था, वह राजनीति, समाजसेवा और सन्त महात्माओंकी सेवामें समर्पित हो जाता था। फिर घरखर्चमें भी दादीजीका उदारस्वभाव, उनकी ब्राह्मणोंकी भक्ति बढ़ोतरी ही करती थी, अतः दुकानमें निजकी पूँजी थी ही नहीं, मात्र कर्ज था। सन्तोषकी इतनी ही बात थी कि पत्नी परम अनुकूल थी और दादीजी भी सहिष्णु थीं । "

"अब घोर विपत्तिरूप प्रभुकृपाका जब इन्हें साक्षात्कार हुआ तो सरकारने इन्हें राजद्रोहके मुकदमेमें फँसा लिया । क्रान्तिकारी गुप्त समितियोंमें सक्रिय भाग लेनेके कारण पुलिसकी डायरीमें तो इनका नाम था ही , ये क्रान्तिकारियोंके मुकदमोंमें सहयोग करते ही थे, अतः एक दिवस सदल-बल पुलिस इनकी दुकानपर पहुँच गयी और २० जुलाई १९१६ई०को इन्हें राजद्रोहके अपराधमें बन्दी बना लिया गया । अभी इनका विवाह हुए तीन मास भी नहीं हुए थे, घरमें अकेली स्त्रियाँ थीं , कारावासमें कितने दिन रहना होगा, पता नहीं था, घरमें अन्नवस्त्र भी कहाँसे कैसे आवेगा, कर्जदार यदि अपने कर्जकी माँग कर बैठे तो स्त्रियाँ कैसे व्यवस्था करेंगी,आदि चिन्ताओंने इन्हें पूरा आवृत कर लिया। इनका हृदय तड़फड़ाने लगा। चारों ओर अन्धकार ही दिखाई पड़ने

लगा। जब कोई कहीं सहारा नहीं दिखा तो श्री सेठजीका सत्संग याद आया। प्रथम मिलनसे ही श्रीसेठजीके प्रति आत्मीयता तो हो ही गयी थी, उनके सत्संगमें नियमित जाना होता ही था । श्रीसेठजी नाम-माहात्म्यपर अनेकों बार सत्संग करा चुके थे , अतः अशरणशरण भगवान्‌के नामका ही अवलम्ब ग्रहण करना उन्हें अन्तिम उपाय समझमें आया। श्रीपोद्दार महाराजने भगवन्नामकी रट लगा दी। भजन करनेकी देर थी कि शान्तिका आविर्भाव होने लगा। शनैः-शनैः व्याकुलता दूर हो गयी। उनकी पारमार्थिक उन्नतिका सूत्रपात प्रारंभ हो गया।'

श्रीपोद्दार महाराजकी जागतिक मित्रमंडली तो बहुत बड़ी थी । श्रीअरविन्द, श्रीसुरेन्द्रनाथ बनर्जी, श्रीविपिनचन्द्र पाल, श्रीचित्तरंजनदास, श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्रीश्यामसुन्दर चक्रवर्त्ती, श्रीसखाराम गणेश देउस्कर, सभीके साथ तो पोद्दार महाराजका अन्तरंग सम्पर्क था। ये सभी कलकत्तेके उस समयके धुरीण नेता, धनीमानी और समाजमें पूरी प्रतिष्ठा पाये महानुभाव थे। परन्तु विपत्ति पड़नेपर इनमेंसे किसी एकने भी इनके परिवारकी ओर या इनकी ओर झाँका भी नहीं। मानव सोचता है – प्रभावशाली लोगोंकी मिताई मेरे किसी विपत्तिके निवारणमें हेतु होगी, धनी-मानी परिचित मित्र-समुदाय मेरी संपत्तिमें हेतु होगा, परन्तु होता है सर्वथा ही विपरीत। जब घोर विपत्ति आती है तो प्रभावशाली लोग देखते ही नहीं, परिवारके निकटसे निकट, रक्तके सम्बन्धी निकम्मा समझ त्याग देते हैं, लोभनीय वस्तुओंके छिनते ही मनुष्य सभीकी दृष्टिमें हेय, उपेक्षणीय और घृण्य हो जाता है। हाँ ! उस समय उसे सच्ची आत्मीयता ,मिताई, अपनत्व एकमात्र सच्चे सन्त-जगत्‌से ही मिलती है। इस घोर विपत्तिके समय भी श्रीसेठजी जयदयालजी ही ऐसे थे जो अंग्रेज सरकारके भयसे सर्वथा न घबड़ाते हुए श्रीपोद्दार महाराजकी पारिवारिक स्त्रियोंकी सक्रिय एवं सब प्रकारकी सहायता करते रहे। बराबर वे जब-जब कलकत्ते आते उनसे मिलते, उन्हें आत्मीयता, सांत्वना, और यथावश्यक सहयोग देते। श्रीपोद्दार महाराजको श्रीसेठजीने लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकारसे सम्हाला । ''

''श्रीपोद्दार महाराजको सेठजीकी यही अनुपम अनमोल पारलौकिक सहायता मिली कि उनका उस समयका घोर मानसिक विपत्तिपूर्ण जीवन एक कठोर साधनाका उपक्रम हो गया। भगवन्नामकी कृपासे सरकारके द्वारा पूरी

चेष्टा करनेपर भी, ठोस आधार नहीं मिलनेसे राजद्रोहका मुकदमा चलाना संभव नहीं हो पाया। सन्देहके आधारपर सरकार लम्बे समयतक जेलमें भी नहीं रख सकी । अतः भारत-रक्षा-कानूनका सहारा लेकर इन्हें अनिश्चित कालके लिये नजरबन्द करनेका आदेश दे दिया गया। इनको बाँकुड़ासे २४ मील दूर शिमलापाल नामक ग्राममें जानेका आदेश मिला। "

" शिमलापालका जीवन एक कठोर साधनाका सोपान होगया। थोड़े ही दिवसोंमें उनकी वृत्ति ध्येयाकार होने लगी। भगवान्के ध्यानमें श्रीपोद्दार महाराजको इतना रस आने लगा कि प्रातः, दुपहरी एवं संध्या, तीन-तीन घण्टे ध्यानमें व्यतीत होने लगे। मात्र जो भी अल्प समय शारीरिक आवश्यक कार्यों – शौच, स्नान, भोजनादिमें लगता, उसे छोड़कर शेष सभी समय नामजप एवं स्वाध्यायमें लगने लगा। इसका फल यह हुआ कि इन्हें आँखें खुली रहते विष्णु भगवान्की मूर्तिका ध्यान होने लगा। नामजपमें इतना रस आने लगा कि नामजप छूटना असह्य हो जाता। जीभ सतत बिना प्रयास नामजपमें लगी रहती। आध्यात्म-साधनाको जहाँ इतना दुरूह कहा जाता है कि

जनम जनम मुनि जतन कराहीं ।
अन्त राम कहि आवत नाहीं।।

वहाँ श्रीपोद्दार महाराज मात्र एक-डेढ़ वर्षके अत्यल्प साधन कालमें ही सन्तप्रवर श्रीसेठजीकी कृपासे उस उत्तम स्थितिमें पहुँच गये कि इन्होंने इस शिमलापालकी नजरबन्दीके कालमें "प्रेम-दर्शन" नामसे देवर्षि नारद-प्रणीत भक्तिसूत्रोंकी अत्युत्कृष्ट टीका लिख ली । इसका प्रकाशन कुछ संशोधनों सहित आगे जाकर गीताप्रेससे हुआ। इस ग्रन्थमें प्रेमरूपा भक्तिकी इनके द्वारा की गयी ऐसी सरल एवं गंभीर व्याख्या है जो कि चिरकालके लिये विश्वके भक्तिमार्गी जीवोंके मननमें पथ-प्रदर्शकका कार्य करेगी । यह टीका इतनी अनमोल भक्तिग्रन्थ हो गयी कि स्वयं श्रीनारदजीने जब श्रीपोद्दार महाराजको सन् १९३६ ई०में दर्शन दिये तो इस पुस्तककी सराहना की। "

"इस नजरबन्दीकी अवधि मात्र इक्कीस मास चली। इस अवधिके पश्चात् इन्हें बंगालसे निष्कासित कर दिया गया। बंगाल त्यागकर ये अपने ग्राम रतनगढ आ गये और कुछ दिन पश्चात् श्रीजमनालालजी बजाजने इन्हें कोई काम-काज करानेके निमित्तसे बम्बई बुला लिया। "

"श्रीपोद्दार महाराजके देश–सेवा और समाज–सेवाके संस्कार अब भी पूरी तरहसे निर्मूल नहीं हुए थे। श्रीजमनालालजी बजाजके बम्बईके संगने इन्हें पुनः उभार दिये। श्रीबजाज उस समय राष्ट्रनेताओंके एक प्रकारसे आश्रयदाता ही थे। अतः श्रीपोद्दार महाराजका इन नेताओंसे सम्बन्ध घनिष्ठतर, घनिष्ठतम होता गया। श्रीगाँधीजीसे तो इनकी आत्मीयता इतनी बढ गयी कि वे जब भी बम्बई आते, पोद्दार महाराजके घर उनकी दादी रामकौरसे मिलने अवश्य आते। श्रीबालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, श्रीविनायक दामोदर सावरकर, श्रीवल्लभभाई पटेल, श्रीअब्दुलगफ्फार खॉं, श्रीमुहम्मदअली जिन्ना आदि सभी नेता श्रीपोद्दार महाराजकी सेवासे प्रभावित थे। ये सन् १९१९के कांग्रेस–अधिवेशनमें अमृतसर, सन् १९२० के अधिवेशनमें कलकत्ता, सन् १९२१ ई० के अधिविशनमें अहमदाबादमें सम्मिलित हुए।"

"गोस्वामीजी ! यह परम सत्य है कि सच्चे महासिद्ध सन्त एवं स्वयं भगवान् यदि किसी जीवको एक बार अपना लेते हैं तो फिर कभी त्यागते नहीं। ऐसा ही संयोग श्रीपोद्दार महाराजके जीवनमें भी घटित हुआ। श्रीपोद्दार महाराज नेताओंकी राजनीतिमें उलझ गये थे , सन्तकृपा तो उनकी प्रतीक्षा कर ही रही थी । इधर जुलाई–अगस्त सन् १९२०में श्रीजमुनालालजी बजाज किसी कार्यवश सेठजीसे मिलने चक्रधरपुर गये तो इन्हें भी उनके साथ जाना पड़ा। इस समय इन्हें उनकी एक सेवा भी करनेका सुअवसर प्राप्त हो गया। जैसा कि पूर्वतः उल्लेख हो चुका है श्रीसेठजी का हिन्दी भाषाज्ञान सर्वथा नगण्य था। वे मारवाड़ी–मिश्रित साधारण हिन्दीमें ही बोलते थे और उनका वैसा ही लेखन भी था । उन्होंने श्रीपोद्दार महाराजको चक्रधरपुरमें अपनी दो लघु पुस्तकें 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति' और 'प्रेम भक्तिप्रकाश' भाषासुधार एवं संशोधनके लिये दीं । श्रीसेठजी अपने मूल भावोंको अत्यन्त स्पष्ट तथा प्रभावशाली शैलीमें अभिव्यक्त देखकर गद्गद् हो गये। भगवान् एवं सन्त तो भावके भूखे होते हैं , वे अपनी तनिक–सी सेवाको बहुत करके मानते हैं । गोस्वामीजी ! श्रीपोद्दार महाराजने मुझसे अनेक बार कहा है कि इस प्रथम अति अल्प एवं नगण्य–सी सेवासे ही महासिद्ध सन्त सेठजीने मेरी परमार्थ–उन्नतिके भीषण अवरोधात्मक कपाट उन्मुक्त कर दिये। ' "गोस्वामीजी ! यह केवल श्रीपोद्दार महाराजके साथ हुई घटना ही नहीं है, मेरे साथ भी ठीक ऐसी ही घटना घटित हुई। श्रीस्वामी रामसुखदासजी द्वारा प्रेरित मैं श्रीसेठजीसे मिलने सर्वप्रथम बाँकुड़ा

गया था। हम लोगोंके मध्य लगभग चौदह–पन्द्रह दिवसोंतक सत्संग–चर्चा हुई। उस सत्संगके आधारपर मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि श्रीमद्भगवद्गीता–सम्बन्धी सेठजीके जो भाव हैं, वैसे अन्यत्र देखनेमें नहीं आते । श्रीसेठजीका यह गहन चिन्तन यदि लिपिबद्ध नहीं हुआ तो जगत् एक दिव्य एवं दुर्लभ निधिसे वंचित रह जायगा। मैंने उस समय श्रीसेठजीसे कहा – "आप गीता–सम्बन्धी अपने विचारोंको लिपिबद्ध करा दें।" अपनी विवशता व्यक्त करते हुए श्रीसेठजीने मुझसे कहा–"कौन करे, और कैसे होगा, मैं तो शुद्ध हिन्दी भी बोल नहीं पाता।"मेरे मनमें भगवत्कृपाप्रेरित अचानक सेवाभाव उदय हो उठा। मैंने इस कार्यके लिये अपनेको प्रस्तुत करते हुए कह दिया –"आप अपने विचार मुझे बतलायें। उनको लिखकर मैं आपको दिखलाता हूँ। यदि आपको ऐसा प्रतीत हो कि मेरे द्वारा ठीक लिखा गया है, तो फिर लेखनकार्य हो । मैंने श्रीसेठजीके एक प्रवचनको शुद्ध हिन्दी भाषामें लिपिबद्ध करके श्रीसेठजीके सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। मेरी अभिव्यक्ति, भाषा और विषय–प्रस्तुतिसे श्रीसेठजी बहुत ही प्रसन्न हुए । गोस्वामीजी ! मात्र मेरी इतनी–सी सेवाके फलस्वरूप श्रीसेठजीने मुझे अद्वैत साधनाके अनुसार पूर्ण ब्राह्मी–स्थितिमें प्रतिष्ठित कर दिया। वैसे मेरी साधन–स्थिति पहलेसे ही पूर्ण थी परन्तु मेरी एक ऐसी गुत्थी थी, जो सुलझ नहीं रही थी। श्रीसेठजीने मेरी इस गुत्थीको कुछ–एक क्षणोंमें ही हल कर दिया और मुझे उनका महापुरुषत्व स्वीकार करना पड़ा।"

"गोस्वामीजी ! सच्चे सन्त जिस किसी भी प्राणीको जब स्वीकार कर लेते हैं, तो उसके हृदय और अन्तरात्मामेंसे वे स्फुटित होते हैं । वे अपनी आत्मीयता और स्नेह–स्मृतिकी ऐसी बाढ़ छोड़ते हैं कि ग्रहीत व्यक्ति उनके बिना रह नहीं पाता। वह उनके संगके लिये विवश हो जाता है। "

"श्रीपोद्दार महाराजकी भी यही स्थिति हुई। श्रीसेठजीसे सत्संग सुननेकी अचानक ही उनकी इतनी तीव्र रुचि हो उठी कि उनसे रहा ही नहीं गया और वे सेठजीको बम्बई बुलाकर सत्संग आयोजन करनेकी बात सोचने लगे। उन्होंने अपने सभी मित्रोंसे श्रीसेठजीको पत्र एवं तार दिलाये एवं श्रीसेठजीको बम्बई आनेका निमंत्रण दिया । अन्ततः सत्संग कराये जानेकी योजना सफल हो ही गयी। सन् १९२२ की शरद ऋतुमें श्रीसेठजी अपने बीस–पच्चीस साथियों सहित बम्बई पधारे। श्रीपोद्दार महाराजकी प्रेरणासे सैकड़ों प्रतिष्ठित व्यक्ति स्टेशन आये एवं श्रीसेठजीका भव्य स्वागत हुआ। श्रीसेठजीका लगातार

दस दिनोंतक श्रीसुखानन्दजीकी धर्मशाला और नरनारायणके मन्दिरमें सत्संग हुआ। दस दिनोंतक सत्संगकी धारामें कितने ही व्यक्तियोंने निमज्जन किया। अनवरत इन दस दिवसोंमें श्रीसेठजीकी सारी सार–सँभाल, व्यक्तिशः सभी सेवा श्रीपोद्दार महाराजने स्वयं की। श्रीसेठजीने विदा होते समय प्रतिदिन सत्संग होता रहे, इसका दायित्व श्रीपोद्दार महाराजपर ही डाल दिया।

गोस्वामीजी ! श्रीसेठजीकी इन दस दिनोंकी सेवाका फल श्रीपोद्दार महाराजको श्रीसेठजीने इतना अनमोल दिया कि उनकी साधनामें अतिशय तीव्रता आ गयी। क्योंकि स्वयं श्रीसेठजी प्रधानतया निर्विशेष ब्रह्मवादी थे अतः श्रीपोद्दार महाराजकी भी प्रवृत्ति प्रथमतः निर्विशेष ब्रह्ममें ही रही। श्रीसेठजीको श्रीपोद्दार महाराज द्वारा लिखे पत्र ही इस विषयके प्रमाण हैं।। श्रीपोद्दार महाराजने मुझसे एकान्त सत्संगमें अनेकों बार यह भी कहा है कि श्रीसेठजीकी आज्ञानुकारिता और उनके संकल्पसे ही उनमें सफल सम्पादनकला एवं आध्यात्मिक वक्तृत्वका प्रकाश हुआ ।"

श्रीशिवनारायणजीकी बाड़ीमें श्रीपोद्दार महाराज सत्संग कराने लगे। श्रीपोद्दार महाराज सदैवसे ही आत्मगोपन प्रवृत्तिके थे । उनकी वाणी भी बोलते समय हकलाती थी। परन्तु अपने आध्यात्मिक गुरुके संकेतका उल्लंघन वे कैसे करते। इस सन्त–आज्ञापालनरूप सेवाने श्रीपोद्दार महाराजको भविष्यमें आध्यात्म जगत्का अतिशय गंभीर, सारगर्भित प्रवक्ता बना दिया। वे अति सरल भाषामें कूट–से–कूट आध्यात्मिक गुत्थियोंको सुलझा देते थे। बम्बईमें मात्र मारवाड़ी ही नहीं, मराठी एवं गुजराती भाषाभाषी लोग भी उन्हें सुनने आते। श्रीपोद्दार महाराज बादमें श्रीरामचरितमानस पर भी प्रवचन करने लगे। उनके सत्संगमें प्रतिदिवस ही, यदि वे बम्बई होते, श्रीजमुनालालजी बजाज, श्रीकृष्णदास जाजू आदि भी अवश्य आते थे। उनका सत्संग अतिशय भावपूर्ण होता और सभी श्रोता प्रवचन सुनते समय मंत्रमुग्ध हो जाया करते थे। अनेक बार देशके सर्वप्रतिष्ठित उच्चकोटिके महात्माओंके सम्मुख भी श्रीपोद्दार महाराजने अपने विचार रखे हैं, इनमें स्वामी अच्युतमुनिजी,श्रीभोलेबाबाजी, श्रीउडियाबाबाजी, श्रीहरिबाबाजी, माँ आनन्दमयी ,श्रीशिवानन्दजी, स्वामी एकरसानन्दजी, रामानुज–सम्प्रदायके परमाचार्य श्रीअनन्ताचार्यजी, वल्लभसम्प्रदायके आचार्य श्रीगोकुलनाथजी, श्रीदीक्षितजी महाराज आदि प्रमुख हैं । श्रीपोद्दार महाराजके आध्यात्मिक विचार सदैव उनके सच्चे आन्तरिक विश्वाससे ओतप्रोत होनेके

कारण सदा सभीके लिये श्रोतव्य और आत्मप्रेरक होते थे।"

"गोस्वामीजी ! श्रीपोद्दार महाराजकी श्रीसेठजीके प्रति सदा नारायण–भावमयी ही दृष्टि रही। यद्यपि श्रीसेठजी प्राकृत–शरीरधारी एक मारवाड़ी व्यक्ति ही थे, परन्तु श्रीपोद्दार महाराज इन्हें कृमि, विष्ठा, मल–मूत्रका आगार सर्वथा नहीं देखते थे। श्रीपोद्दार महाराजकी इस विशुद्ध भगवन्मयी दृष्टिका प्रमाण उनका यह पद है जो उन्होंने सन् १९२२ ई.में श्रीसेठजीकी वन्दनाके रूपमें लिखा था :–

जयति देव,जयति देव, जयदयालु देवा ।
परम गुरू, परमपूज्य, परम देव,देवा ।।
सब विधि तव चरन–सरन आइ पर्यौ दासा ।
दीनहीन, अति मलीन तदपि सरन आसा ।।
पातक अपार किन्तु दया को भिखारी ।
दुखित जान राखु सरन पापपुंजहारी ।।
अबलौं के सकल दोष छमा करहु स्वामी।
ऐसौ करु जाते पुनि हौं न कुपथगामी ।।
पात्र हौं, कुपात्र हौं , भले अनधिकारी ।
तदपि हौं तुम्हारौ अब लेहु मोहि उबारी ।।
लोग कहत तुम्हरो सब, मनहु कहत सोई ।
करिय सत्य सोइ नाथ भव–भ्रम सब खोई ।
मोरि ओर जनि निहारि , देखिय निज तनही ।
हठ करि मोहि राखिअ हरि ! संतत निज पनही ।।
कहौं कहा बार–बार जानहु सब भेवा ।
जयति जयति जयदयालु जयदयालु देवा ।।

यहाँ श्रीपोद्दार महाराजने जो 'हरि' शब्दका प्रयोग किया है, यह स्पष्ट उनकी अपने गुरु–सन्तके प्रति भगवन्मयी निष्ठाका ही द्योतक है।"

उत्कृष्ट साधककी दृष्टि तो जड़–चेतन समग्र जगतके प्रति भी भगवन्मयी 'वासुदेवःसर्वम्' की होती है, फिर अपने गुरु एवं संतके प्रति कृमि, विष्ठाभाण्डकी दृष्टि रखना तो पूर्ण अधर्म एवं पाप ही है। श्रीपोद्दार महाराजकी इस विशुद्ध, परम पूत दृष्टिका ही परिणाम था कि उनकी इतनी शीघ्र उन्नति हुई। उन्हें पहले नित्य, अखण्ड, निरवयव, निर्विशेष ब्रह्मकी अपरोक्ष अनुभूति होने लगी

पहले नित्य, अखण्ड, निरवयव, निर्विशेष ब्रह्मकी अपरोक्ष अनुभूति होने लगी और साथ-ही-साथ बम्बईके अपने व्यापारी जीवनमें ही उन्हें वनवासी वेषमें श्रीलक्ष्मणजी एवं सीताजी सहित भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए। गोस्वामीजी ! श्रीपोद्दार महाराज द्वारा ये सभी बातें मुझे अपने मुखसे कही गयी हैं । उनकी सन् १९२२ ई० में ही ऐसी सहज स्थिति थी कि चलते-चलते हठात् उनका बाह्य-ज्ञान जाता रहता था । नेत्र खुले रहते थे और वे स्थिरदृष्टि रात्रिमें नौ-नौ घण्टे अधिकांशतः समाधिस्थ रहते थे ।"

"सन् १९२१ ई० में भिवानीके भक्त श्रीलक्ष्मीनारायणजी हरिनामप्रचारके लिये बम्बई आये थे । ये नवद्वीपवासी गौड़ीय सन्त श्रीरामकरणजीके अनुगत थे। भगवन्नाम-संकीर्त्तनके प्रचारमें ये मस्त होकर घूम-घूमकर नृत्य करते और अनेकों बार मूर्च्छित हो जाते थे। श्रीपोद्दार महाराजके हृदयमें गौडीय राधा-माधवकी दिव्य महाभावधाराका उन्मेष बीजरूपमें इनके द्वारा ही हुआ, यह एक प्रकारसे कहा जा सकता है। इनके संगसे श्रीपोद्दार महाराजके मन, प्राण, वाणी और शरीर सभी कुछ पूर्ण रूपसे भगवद्रसमें डूब गये ।"

"गोस्वामीजी ! मैं आपको अत्यन्त मित्रोचित यही राय दे सकता हूँ कि आपको प्रेमाभक्तिकी उपलब्धि यदि अपेक्षित है, तो श्रीपोद्दार महाराजरूप महासिद्ध सन्तकी यावज्जीवन सेवा और उन्हें अपना पूर्ण आत्मसमर्पण ही मात्र इसका उपाय है।"

" गोस्वामीजी ! जसीडीहमें श्रीपोद्दार महाराजको भगवान विष्णु अथवा नारायणदेवके जो दर्शन हुए, उसके विषयमें उन्होंने मुझे जो कुछ कहा वह शब्दशः मुझे याद है । उन्होंने मुझे जो कहा था, उसे सुनिये –" जिस जगह श्रीसेठजी विद्यमान थे, उस जगह मुझे खुली आँखें भगवान्‌की चतुर्भुज मूर्त्तिके – जैसे दो व्यक्ति आमने-सामने बैठे हों, उस प्रकार दर्शन होने लगे । मेरे आनन्दका पार नहीं रहा। मैंने थोड़ी देर भगवान्‌के रूपका वर्णन किया। वृत्तियाँ फिर बाहरसे सर्वथा हट गयीं। मैंने भगवान्‌के चरणोंको स्पर्श करनेकी चेष्टा की। किन्तु पहले तो हाथ आगे बढ़े नहीं । जब हाथ आगे बढ़े, और मैं चरणस्पर्शको उद्यत हुआ तो भगवान् अन्तर्धान हो गये और जहाँ साक्षात् भगवान्‌के दर्शन हो रहे थे , उस जगह श्रीसेठजी दिखने लगे। तब मैंने श्रीसेठजीसे प्रार्थना की कि चरणोंका स्पर्श होना चाहिये। श्रीसेठजीने उत्तर दिया कि ध्यान होना तो तुझे सहज है, पर चरणोंका स्पर्श होना अगलेकी

मर्जीपर है । इतना कहनेके साथ ही अकस्मात् अनन्त प्रकाश हो गया। फिर मुझे उसी तरह दर्शन होने लगे । मैंने आनन्दसे विह्वल होकर भगवान्के दाहिने चरणको पकड़ लिया और चरणोंमें बलात्कारसे जा पड़ा । भगवानने मेरे मस्तकपर हाथ रख दिया। तब पीछेसे लोगोंने कहा कि तुम तो श्रीजयदयालजीके चरणोंमें पड़े थे। मेरी दृष्टिमें तो उस जगह भगवान् नारायणके सिवाय और कोई भी नहीं था । श्रीजयदयालजी मेरी दृष्टिमें सर्वथा नहीं थे । केवल नारायणदेव ही थे । इस स्थितिमें मैं बहुत देरतक पड़ा रहा। भगवान् मेरे मस्तकपर हाथ रखे हँसते रहे । फिर भगवानके अन्तर्धान होते ही मेरे चित्तमें व्याकुलता होकर मेरी आँखें खुल गयीं । मैंने देखा – मेरा मस्तक श्रीज्वालाप्रसादजीकी गोदमें था। मेरे अन्दर आनन्दकी इतनी बाढ़ थी कि मेरा बाह्य ज्ञान बार-बार जाता रहा। मैं बड़े आनन्दके साथ चलता तो मुझे प्रत्यक्ष दिखता भगवान् मेरे साथ चल रहे हैं । फिर मुझे भवनमें लाकर बिठा दिया गया। वहाँ भी मुझे भगवानके दर्शन होते रहे। फिर मुझे सेठजीके पास लोग ले गये, वहाँ भी मुझे उन्हींके रूपमें भगवान्के दर्शन होते रहे । तब मैंने दण्डवत् की । उसके पश्चात् मुझे बाहरी ज्ञान हुआ।''

''इस वर्णनको श्रीपोद्दार महाराजके मुखसे सुननेके पश्चात् मेरे चित्तमें यह बात पूर्णतया सुदृढ़ हो गयी कि भगवान् चाहे निर्गुण हों अथवा सगुण, वे महापुरुषोंके स्वयंके ही मात्र निज स्वरूप हैं और महापुरुष एवं भगवान्में स्वरूपतः किंचित् भी भेद हो ही नहीं सकता। महापुरुषका देह ही प्राकृत भले दीखे, शेष उसके अन्तःकरणका पूर्ण विलय भगवानमें हो जाता है । और ऐसा भी संभव है कि कुछ महात्मा मात्र हमारी चर्मचक्षुओंसे प्राकृत दीखते रहे हों, वस्तुतः उनका शरीर भी चिन्मय हो । मेरी तो यह निर्विवाद मान्यता है कि तत्व चाहे निर्गुण, निराकार, निर्विशेष हो, चाहे सगुण, साकार, सविशेष, यदि किसीको भी वितरित होता है, तो महापुरुषोंके द्वारा ही। उसको पानेका अन्य कोई उपाय ही नहीं है । इसमें प्राथमिक आवश्यकता इतनी ही है कि बस, एक बार साधक आत्मसमर्पित हो जाय । उसका अहं विगलित होकर महापुरुषके चरणोंमें विलीन होनेको उत्सुक हो उठे , इतना होते ही महासिद्ध सन्तोंका निज स्वरूप – वह चिन्मय परम सरस रसप्रवाह – साधकके कठोर प्राकृत अहंको प्रथमतः चतुर्दिक् घेर लेता है, फिर शनैः-शनैः उसे मसृण करता है, उसमें प्रवेशके लिये छिद्र संघटित करता है और तब उसे ध्वंसकर अपनेमें

लीन कर लेता है। महापुरुषोंके निज स्वरूपसे एक होना ही भगवत्साक्षात्कार है,क्योंकि भगवान् और महापुरुष दो होने संभव ही नहीं हैं। "

"गोस्वामीजी ! सेठजी जयदयालजी गोयन्दका ऐसे ही सन्त हैं, जिनमें त्याग एवं समर्पणकी पूर्णता है । कोई लौकिक भाव उनकी आन्तरिक प्रीतिधाराको अवरुद्ध कर ही नहीं सकता। श्रीपोद्दार महाराजको जब उन्होंने भगवद्दर्शन कराये, उस समय वे रुग्ण थे। उनके चारों ओर जो वैश्य-समुदाय है, वह भी बहुत ही धन एवं विषयलुब्ध है। परन्तु उनमें भगवद्रुचिरूप गीताके प्रचारकार्यकी ऐसी अदम्य तेजस्वी वृत्ति है , जिसे तनके रोग-शोक, अभाव-व्याधि, बहु भोगजनित सुख-दुखोंका प्राबल्य लेशमात्र भी प्रभावित नहीं कर पाता। उनका चित्त भगवत्प्रेमका पारावार है। उनमें भगवत्प्रेम एवं त्यागकी अनुपम लहरें अविराम उच्छलित होती रहती हैं । "

"श्री सेठजीका मत है कि सगुण-साकार भगवानके दर्शनके पश्चात् तत्वज्ञान तत्क्षण ही होना चाहिये। वे तत्वज्ञानको साध्य एवं भगवद्दर्शनको साधन मानते हैं, परन्तु श्रीपोद्दार महाराजको ठीक इसके विपरीत प्रथमतः तत्वज्ञान और तब भगवद्दर्शन हुए। उन्हें ऐसे ही भगवानकी कृपा तथा अनुभूति हुई जो ब्रह्मतत्वकी प्रतिष्ठा हैं। अतः चाहे उन्हें भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए हों, चाहे विष्णु अथवा नारायणदेवके और आगे जाकर चाहे भगवान् राधा-कृष्णके परम चिन्मय लीला-विहारके, किन्तु उन्हें भगवान्ने अपने उस सगुण साकार परमतत्वका अनुभव कराया, जो ज्ञानोत्तर है । ब्रह्मज्ञानके पश्चात् महाराज जनक कहते हैं – **"बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा"**– श्रीपोद्दार महाराज उस अप्राकृत सगुण-साकार भगवत्तत्वके कृपाभाजन रहे । "

"इसे पुनः ठीकसे समझ लें – सगुण-साकार भगवत्तत्व भी अधिकारी-भेदसे दो प्रकारके साधकोंके सम्मुख प्रत्यक्ष होता है । एक मुक्तिकामी भक्त साधक होते हैं और दूसरे प्रीतिरसके लोलुप भक्त साधक भी होते हैं। मुक्तिकामी भक्त साधकोंको क्योंकि प्रकृतिके बन्धनसे मुक्ति चाहिये, अतः उन्हें उन्हीं भगवान्के दर्शन होते हैं, जिनके अवतारी त्रिदेवोंमेंसे एक भगवान् नारायणदेव हैं । जैसे पृथ्वी जब आसुरी भावोंके भारसे मुक्तिकामिनी हुई तो वह त्रिदेवोंमेंसे एक, श्रीब्रह्मदेवके पास गयी और तब श्रीब्रह्माजी उसे लेकर त्रिदेवोंमेंसे ही एक – भगवान् नारायणदेवके पास पहुँचे। ये विराट पुरुष नारायणदेव शेषशायी भगवान हैं । अनेक कल्पोंमें ये शेषशायी नारायणदेव ही

अपने अंशसे श्रीराम एवं कृष्णका भी अवतार ले लेते हैं। उस समय ये रामकृष्णादि अवतार भी मात्र असुरसंहारका कार्य कर विदा हो जाते हैं। परन्तु कभी-कभी ऐसे साधक भी इस विश्वसृष्टिमें भगवानकी कृपासे जन्म ले लेते हैं, जो मुक्तिकामी न होकर विशुद्धतम भगवत्प्रीतिरसके पिपासु होते हैं । इन विशुद्ध अप्राकृत चिन्मय भगवत्प्रीतिरसके पिपासु साधकोंके लिये उन अप्राकृत गुण और अप्राकृत चिन्मय आकारधारी विशुद्ध प्रीतिरसके उत्स एकमात्र भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनको ही अवतरित होना पड़ता है । ये ब्रजेन्द्रनन्दन पूर्ण, पूर्णतम , अखिल रसामृतमूर्ति हैं। यह प्रेमरस इन ब्रजेन्द्रनन्दन और उनकी प्राणप्रिया भानुराजदुहिता श्रीराधाका ही निजस्व है। यह विलक्षण प्रेमरस स्वरूपगत तात्विक भेद नहीं होनेपर भी निर्विशेष परब्रह्म परमात्मामें अनभिव्यक्त है। अन्तर्यामी परमात्मामें यद्यपि इसका आंशिक विकास है, फिर भी साक्षीरूपमें उदासीनताकी लीलामें प्रवृत्त रहनेके कारण वे भी इस रसके रसिक नहीं ही कहे जा सकते। इसी प्रकार श्रीराम, नृसिंहादि अन्यान्य भगवद्रूपोंमें भी इसकी अनभिव्यक्ति है । एकमात्र प्रेमविलासरूप श्रीराधाकृष्णकी लीला ही इस विशुद्ध प्रेमरसकी स्वरूपभूता है । यह प्रेमरस परस्पर इन दोनों प्रिया-प्रियतम दम्पतीमें ही अभिव्यक्त होता है। यह मात्र उनका ही स्वरूप विलास है, निज स्वरूप है।''

''गोस्वामीजी ! मैं यद्यपि पूर्ण ,परिपूर्णतम ब्रह्मतत्वके ज्ञानी होनेके कारण श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका रूप महाप्रभु नारायणदेवकी अनन्त वन्दना करता हूँ , फिर भी यह सत्य है कि यह विशुद्ध मधुर प्रेमरस उनमें स्वयंमें भी अनभिव्यक्त है। वे अपनेको पूर्ण समझते हैं, अतः कभी-कभी गोपीप्रेमपर लिख-बोल भी जाते हैं परन्तु उनका इस प्रेमतत्वपर लिखना-बोलना उसी प्रकार है जैसे कोई राजनेता, सरकारी मंत्री श्रीमद्‌भगवद्गीता या ब्रह्मज्ञान पर प्रवचन करे। यह विशुद्ध मधुर प्रेमरस तो, सच्ची बात यह है कि व्रजभूमिमें भी गोपराज नन्दबाबा, यशोदा मैया, श्रीवृषभानुजी एवं कीर्तिदा मैया, साथ ही सखावर्गके अनेक पात्रोंसे भी अज्ञात है। यह विशुद्ध प्रीतिरस तो भगवान् श्रीराधाकृष्ण और भगवती श्रीराधाजीकी कायव्यूहरूपा कुछ सखी-मंजरियों तक ही सीमित है, मात्र उनमें ही अभिंव्यक्त है । सनकादि ऋषि भी इससे अछूते हैं। उनका भी इस रसमें प्रवेश नहीं , स्वयं श्रीराम, नृसिंहादि भगवत्तत्व भी इसे संस्पर्श नहीं कर पाते । ''

"क्योंकि श्रीपोद्दार महाराज इस विशुद्ध प्रीति समुद्रमें विहरें – यह पूर्व निर्धारित नियति थी, अतः वे अपने साधनकालके प्रारम्भमें ही इन्हीं ज्ञानोत्तर अप्राकृत विशुद्ध ब्रह्म-विमोहन सगुण साकार प्रेमविग्रह श्रीराधामाधवके कृपाभाजन हुए। श्रीपोद्दार महाराजके सम्मुख तो प्रेमविग्रह श्रीकृष्ण ही सन्धिनी शक्तिके विलासरूपमें परतत्व ब्रह्म बनकर आये । यह ब्रह्म परतत्व इन श्रीकृष्णचन्द्रकी नखचन्द्रोंकी चिज्ज्योति मात्र ही तो है। इसी प्रकार ये सर्वभवनसमर्थ श्रीकृष्ण ही इनके सम्मुख त्रिदेवोंमेंसे एक, श्रीनारायणदेव बन गये थे। ये ही कौशल्यानन्दन राम बनकर इनको अपनी दर्शनकृपासे परिस्नात करने प्रकट हो गये। क्योंकि इन सभी रूपोंमें प्रेमरसरसिक भगवान् श्रीकृष्ण ही इनके सम्मुख अभिव्यक्त हुए थे अतः इस प्राकट्यकी क्रमशः यही परिपाटी रही कि पहले भगवान्के चरणनखकी चिज्ज्योति परब्रह्म परमात्मा श्रीपोद्दार महाराजके हृदयधामको आलोकित करे, और तब इन सभी अंशावतारोंके द्वारा इनका हृदय भक्तिभूमि बने और तब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण इनके हृदय-वृन्दावनमें विहरें। "

"गोस्वामीजी ! कोई यह पूछ सकता है श्रीपोद्दार महाराजमें ऐसी क्या विशेषता थी जिससे उनमें इन सर्वोच्च प्रेमधाम भगवान् श्रीराधामाधवका अवतरण एवं कृपा-प्रकाश हुआ। इसका उत्तर वैसे तो कुछ भी नहीं हो सकता, क्योंकि भगवत्कृपा साधन-साध्य अथवा योग्यता-सापेक्ष नहीं है, हेतुरहित है, किन्तु यदि पात्रताकी बातका अन्वेषण किया ही जाय तो इस मार्गमें यही कहा जा सकता है कि श्रीपोद्दार महाराजमें भगवदिच्छाकी पूर्ति एवं तत्सुखसुखियाभावका प्राधान्य एवं प्रबल वेग इतना अधिक था कि भगवल्लीला महासिन्धुने उन्हें पूर्णतया रसाप्लावित कर दिया। उनके मनका निर्माण ही ऐसा था कि उसमें भगवद्रुचिके अतिरिक्त अपनी कोई भी स्वतंत्र रुचि , स्वतंत्र इच्छा साधन-कालमें भी नहीं रही थी । वे जब भी साधनामें प्रवृत्त हुए तो वे भगवान्की महदिच्छासे एकमेक हो गये। उनका भगवान्की रुचिसे प्रथक् कोई अपना स्वयंका व्यक्तित्वमूलक तटबन्ध था ही नहीं। अतः भगवान् श्रीराधा-माधवका अप्राकृत सौन्दर्य, माधुर्य, सौशील्य एवं लीला-महासिन्धु उनके चित्तमें जैसे ही संस्पर्शित हुआ, होते ही ऐसा उमड़ा कि उसने उंन्हें पूरा रस-आप्यायित कर दिया। "

"पू. पोद्दार महाराजका हृदय स्वभावतः ही ऐसा था कि वे सेवाको ही साधनरूपा और उसे ही सिद्धिरूपा मानते थे । श्रीसेठजी जयदयालजी

उसकी गूँज नहींके बराबर थी। हारमोनियमकी भी धौंकनी फट गयी थी, वह भी पूरी मरम्मत माँग रहा था। झाँझोंमें भी न तो गद्दे थे और उनकी डोरी भी बदलनी आवश्यक थी । कांस्य झालरका हत्था लापता था। उसे लटकानेका तार भी खण्डित था। मैंने तत्क्षण ही साइकलके कैयियरमें हारमोनियम बाँधा, उसके हैण्डिलमें ढोलक लटकायी, झोलेमें झालर, झाँझें भरीं और सभीकी मरम्मत कराने बाजारकी ओर चल पड़ा। समयके पूर्व ही यह कार्य सम्पन्न करके ही मुझे लौटना था।

भगवत्कृपावश सभी निर्माणकार्य समयपर हो गये। हारमोनियम एवं ढोलक कुछ समय माँग रहे थे, अतः मैंने इनकी एवजमें मरम्मत करनेवालेकी दुकानसे दूसरा अच्छा हारमोनियम और ढोलक ले लिये। इस प्रकार संकीर्त्तनकी पूरी तैयारी करके मैं समयसे पाँच–दस मिनट पूर्व ही गीतावाटिका पहुँच पाया।

मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा जबकि मैंने देखा कि वहाँ संकीर्त्तन समारंभ करनेकी सभी तैयारी पूरी हो गयी है । लोग मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। भगवान्‌की पूजाके लिये मेरे मामाजी श्रीचिम्मनलालजी भी उपस्थित हैं। चन्दन, केसर आदि घिसे हुए तथा सभी पदार्थ यथास्थान पात्रोंमें रखे हैं । दीपक भी प्रज्वलित है। निर्मल धूपकी सुगन्ध सर्वत्र परिव्याप्त है। गीताप्रेससे पहलवान दरबान ढोलक बजानेके लिये फोन करके बुलाया जा चुका है। संकीर्त्तनकी सभी तैयारी भगवत्कृपासे मेरे आगमनके पूर्व ही सम्पन्न हो चुकी थी।

भगवद्विग्रहका यथासमय पंचोपचार विधिसे मेरे पूर्वाश्रमके मामाजीने पूजन किया और "अच्युतं केशवं रामनारायणं,कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम् " श्रीमदादिशंकरस्वामि–विरचित नामावलिसे यथासमय संकीर्त्तन प्रारंभ होगया।

विद्युत्‌की भाँति यह समाचार वाटिका एवं आसपासके सभी परिजनोंके घरोंतक पहुँच गया था कि उन सबके प्राणप्यारे जीवनसर्वस्व भाईजी श्रीपोद्दार महाराजके सकुशल लौट आनेके लिये संकीर्त्तन प्रारंभ होगया है। यह समय गृहस्थ स्त्रियोंके लिये भोजन–निर्माणका रहता था, परन्तु सभी स्वजन लोग सुविधा–असुविधाका बिना ध्यान किये एकत्र होते गये। थोड़े ही समयमें मैंने देखा, संकीर्त्तन करनेवालोंकी संख्या शताधिक हो चुकी थी।

मैं आश्चर्य कर रहा था कि वाटिका–निवासियोंमें इतना उत्साह कैसे समाया हुआ है। सभी संकीर्त्तन करनेवाले ठीक ताल–सुरमें लय बाँधकर

है, उससे इन सन्तोंकी सेवा करके इन्हें अपने अन्तःकरणमें पूरा भरें । यदि यह हमने कर लिया तो हमारा जीवन स्वतः ही इनके वस्तुगुणसे जुड़ जायगा। और इन संतोंका जो वस्तुगुण है वह हमें आप्यायित करनेमें फिर एक क्षणका भी विलम्ब नहीं करेगा।''

''गोस्वामीजी। जब नदीमें बाढ़ आती है तो मात्र तटवर्ती ग्राम ही डूबते हैं, परन्तु यदि समुद्र उफन उठे तो फिर क्या बचेगा, कुछ भी नहीं । हम सभी राधामाधव-प्रीतिरस-समुद्रसे अभी इसी एक क्षणमें ही एकमेक हो सकते हैं, यदि हम अपना पूर्ण आत्मसमर्पण किसी भी सिद्ध सन्तको करदें। ''

सात्विक शौर्य

दूसरा अध्याय

बात सन् १९४८ ई० की है। महात्मा गाँधीकी हत्या हो चुकी थी। भारत सरकारने निर्दोष हिन्दू-मतावलम्बी नेताओंको भी इस हत्याकाण्डमें फाँसनेकी कुत्सित नीति अपना ली थी। गोरखनाथ-पीठके महन्त श्रीदिग्विजयनाथजी गिरफ्तार कर लिये गये थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, हिन्दू महासभा आदि संस्थाओंपर निषेधाज्ञा लग गयी थी। गीताप्रेस, 'कल्याण' पत्रका प्रकाशन भी रोक दिया जाय, इसके राजनैतिक प्रयास चल रहे थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके सरसंघचालक गोलवलकरजी गिरफ्तार थे ही। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघने अपनेको निर्दोष स्थापित करने एवं अपनी संस्थापर निषेधाज्ञा हटानेके लिये सत्याग्रह-आन्दोलन छेड़ रखा था। प्रतिदिन हजारों स्वयंसेवक जेल भर रहे थे । जेलोंमें इतने व्यक्ति गये थे कि स्थानका अभाव हो गया था। सभी जेलें पूरी भरी थीं। जगह-जगह संघके अल्पवयस्क किशोर स्वयंसेवक संघका भगवाध्वज लगाकर शाखायें लगाते थे और राष्ट्रभक्तिके भावपूर्ण गीत गाते थे। घुड़सवार पुलिस आती थी और निहत्थे बालकोंपर घोड़े चढा देती थी । अनेक स्थानोंपर बेतोंसे बच्चोंको पीटा जाता था।

उस दिवस श्रीपोद्दार महाराजसे आशीर्वाद लेकर स्वयंसेवकोंका एक विशाल जत्था सत्याग्रह करने जा रहा था। इस सर्वदेशव्यापी सत्याग्रहमें सभी प्रमुख संचालक श्रीपोद्दार महाराजके प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते थे। स्वयं श्रीगोलवलकरजी भी इनसे प्रायः सभी महत्वपूर्ण विषयोंमें परामर्श लेते थे।

संघके प्रान्तीय एकत्रीकरणों, सम्मेलनों और वार्षिक उत्सवोंमें श्रीपोद्दार महाराजको अध्यक्ष नियुक्त किया जाता था। क्योंकि श्रीपोद्दार महाराजका स्वास्थ्य इन दिनों इस योग्य नहीं था कि वे सत्याग्रही स्वयंसेवकोंकी इस विराट् त्रिवेणीको स्वयं जाकर आशीर्वाद देते, सत्याग्रही उनके द्वारपर चले आये थे। पूर्ण अनुशासित स्वयंसेवक अपने गणवेशमें खड़े प्रार्थना गा रहे थे। किसी अप्रिय घटनासे पोद्दार महाराजको बचानेके लिये पू. गुरुदेवने उस दिवस आशीर्वाद देने जानेसे उन्हें रोककर उनसे यह अनुमति ले ली थी कि उनके स्थानपर स्वयंसेवकोंको सत्याग्रहकी विदाई वे एवं श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी स्वयं दे देंगे। गीतावाटिकाका फाटक भीतरसे बन्द था, स्वयंसेवक बाहर सड़कपर शाखा लगा रहे थे। श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी बाहर आकर सभी स्वयंसेवकोंको रोलीका तिलक लगा चुके थे। स्वयंसेवक अपने गैरिकध्वजको प्रणाम करते हुए प्रार्थना गा रहे थेः—

''नमस्ते सदावत्सले मातृभूमे''

प्रार्थना प्रारंभ हुई ही थी कि पुलिस घोड़ोंमें चढी आ गयी। छोटे-छोटे किशोर एवं बाल स्वयंसेवकोंकी पंक्तिबद्ध टुकड़ीको यह पुलिसदल निर्ममतापूर्वक कुचलने लगा। मैं पू.गुरुदेवके पास हीं खड़ा था। पुलिसदल स्वयंसेवकोंको छिन्न-भिन्न करनेपर उतारू था। उन्होंने उन्हें भगा देनेके लिये बेंत चलाना भी प्रारंभ कर दिया था। जैसे ही एक बाल स्वयंसेवककी पीठपर बेंतका प्रहार बरसा कि सभी स्वयंसेवक जोरसे **'भारतमाताकी जय'** का नारा लगा उठे। मैंने अचानक देखा कि पू.गुरुदेव दौड़कर पुलिसके अफसरके घोड़ेकी लगाम पकड़ चुके थे। उनके नेत्रोंमें सात्विक शौर्यकी जैसे ज्वाला फूट रही थी। उन्होंने उस पुलिस अफसरके घोड़ेको इतना जोरसे पकड़कर धक्का दिया कि वह घोड़ा आठ-दस पैर पीछे हट गया। पू. गुरुदेवने अचानक अपने वस्त्रोंको अनावृत करके नंगी पीठ करके उस अफसरसे जोरसे कहा – ''जितने हण्टर बरसाना चाहो, बरसाओ मेरी पीठपर। तुम इस वर्दीके मोहमें कितने निरंकुश और निर्मम हो सकते हो, मैं देखता हूँ। करो अत्याचार मुझपर। इन भोलेभाले, देशभक्तिसे भरे गीत गाते हुए, निहत्थे छोटे-छोटे शिशुओंपर अपना शौर्य दिखा रहे हो, तुम्हें लज्जा नहीं आती ? '' इधर तो उस पुलिस अफसरसे पू. गुरुदेव उलझे थे, उधर मैंने देखा गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी भी सभी स्वयंसेवकोंके आगे खड़े हैं और घोड़ोंकी टापोंको अपनी छातीपर झेलनेको आतुर हैं।

मैं सचकित देख रहा था। क्या अभिनव चैतन्य पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा काजी-उद्धारलीलाकी पुनरावृत्ति करने जा रहे हैं ? ठीक वही सात्विक शौर्य तो उनके नेत्रोंसे प्रज्ज्वलित तेजपुञ्जके रूपमें व्यक्त हो रहा था, जो महाप्रभु चैतन्यदेवमें आजके पाँच सौ वर्ष पूर्व व्यक्त हुआ था। उस दिवस यवन हरिदास हरिनाम-संकीर्तन करते हुए काजीके एवं उसके सहयोगियोंके हाथों बेंतप्रहार सह रहे थे, और आज ये बाल स्वयंसेवक काली टोपी, खाकी निकर और श्वेत कमीज पहने **'भारत माताकी जय'** एवं **'वन्दे मातरम् '** का उद्घोष करते भारतीय पुलिससे निर्मम बेंतप्रहार सहन कर रहे थे। भारत देशमें स्वतंत्र भारतकी पुलिसद्वारा **'भारत माताकी जय'** का उद्घोष करनेवाले और **'वन्दे मातरम्'** का नारा लगानेवाले राष्ट्रभक्त निर्दोष बालकोंपर जिनकी सुदृढ भुजायें राष्ट्रके पुरातन अदम्य शौर्यकी प्रतीक गैरिक ध्वजा धारण किये थीं – यह निर्मम बेंतप्रहार एक गैरिकवस्त्रधारी सदय सन्यासी भला कैसे सह पाता? पू. गुरुदेवने उस घुड़सवार पुलिस अफसरके घोड़ेकी रास पकड़ली थी। पू. गुरुदेव कहीं घुड़सवारद्वारा आहत नहीं कर दिये जावें , इस आशंकासे ग्रस्त मैं गुरुदेवकी ओर चीत्कार करता दौड़ पड़ा था। किन्तु मैं पू. गुरुदेवतक पहुँचूँ तबतक तो घुड़सवार पुलिस अफसर घोड़ेसे उतर गया था। उसने अपने सिर पर धारण की हुई पुलिस टोपी उतारकर अपनी वरदीके बटन उन्मुक्त कर दिये थे और क्षीणकाय सन्यासीके तेजस्वी शौर्य-प्रदर्शनसे हतप्रभ हुआ उनके चरणस्पर्श करनेको झुक गया था। बलिष्ठ घोड़ा कोई पशु-आचरण न कर बैठे, पुलिस अफसरके सहयोगीने उस घोड़ेकी रास पकड़ ली थी। अफसरने पू. गुरुदेवके चरण छूकर अति विनम्रतापूर्वक अपनी भूल स्वीकार की। थोड़ी ही देरमें एक पुलिस वान (छोटी बस) आयी और अधिकांश स्वयंसेवकोंको उसमें भरकर जेलकी ओर ले गयी। मैं सचकित देख रहा था – पशुबलपर पू. गुरुदेवका सात्विक आत्मबल किस प्रकार क्षणोंमें ही विजयी हो उठा था।

————

भगवन्नाम–संकीर्तनसे समग्र विपत्तियोंका निरसन

तीसरा अध्याय

सन् १९४८ ई.के फरवरी मासकी बात है। मैं गीतावाटिकामें वैसे ही इधर-उधर टहल रहा था। अचानक मैंने देखा एक मोटरगाड़ी बगीचेमें (श्रीपोद्दार महाराजके निवासमें) प्रवेश कर रही है। गाड़ीमें लाल पट्टीपर उत्तरप्रदेश सरकारका राज्यचिह्न अंकित था। इसका स्पष्ट अर्थ था कि गाड़ी किसी राज्य सरकारके मंत्री महोदयकी है।

स्वाभाविक उन सम्मान्य अतिथिका स्वागत करना मेरा धर्म ही था। अतः मैंने उस गाड़ीके दरवाजेकी ओर कदम बढ़ाये। उस राज्य सरकारकी गाड़ीमें किसी मंत्री महोदयके व्यक्तिगत-सचिव थे और उन्होंने मुझसे श्रीपोद्दार महाराजके सम्बन्धमें पूछा। मैं उन सचिव महोदयको सीधे पोद्दार महाराजके सम्पादकीय कक्षमें लेगया। श्रीपोद्दार महाराज नयन-मूँदे मानो किसी दूसरे ही लोकमें चले गये हों, शान्त बैठे थे। उनकी लेखन-चौकीमें एक लेख पड़ा था जिसकी अग्रिम पंक्तिपर उनकी कलम स्थिर थी। उस लेखपर स्थिर कलम लिये उनके हाथकी मुद्रा यह स्पष्ट प्रकट कर रही थी कि उन्होंने उस लेखकी मात्र ऊपरी पंक्ति पढी है और वे उस पंक्तिके पढने मात्रसे उसे संशोधित करना तो सर्वथा विस्मृत कर गये हैं एवं उद्दीपित हुए किसी अन्य अलौकिक देशमें ध्यानावस्थामें पहुँच गये हैं। मैंने उन सज्जनको पूर्ण आदरसहित उस कक्षमें बैठाया और उनके लिये जल एवं कुछ जलपानकी व्यवस्था करने चला गया।

वे सज्जन तबतक श्रीपोद्दार महाराजकी वह ध्यानावस्थित सहज आनन्दमयी मुखमुद्रा देखते रहे। मैं जब उनके पास जलपान एवं जलकी ग्लास लेकर पहुँचा तबतक तो उन सज्जनने उस श्लोकको पढ़ लिया था, जिसे संशुद्ध करनेके लिये पोद्दार महाराज प्रयत्नरत थे, किन्तु उस श्लोकके प्रथम अक्षरके पढते ही वे किसी अलौकिक भावदेशकी यात्रापर निकल चले थे। उनके नयन मुँद गये थे, उनके नयनोंने इस प्राकृत जगत्के अति मलिन स्वरूपसे विरक्ति ले ली थी और वे अपने इष्ट प्राणपति प्रियतमकी रूपसुधाका

पान करनेमें तन्मय हो गये थे ।

समागत अतिथि स्वयं संस्कृतके एवं साथ ही श्रीमद्भागवतके भी अवश्यमेव पण्डित थे, अतः उन्हें वह श्लोक जो उस लेखमें लिखा था , पूरा याद था। वे मेरे द्वारा प्रदत्त जलपान करते-करते उसे ही उच्चारण कर रहे थे। लेखमें ये ही तीन पंक्तियाँ सर्वोपरि लिखी थीं :–

अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन्
अप्यासीद् विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ।।
अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः ।
जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतंगवत् ।।
अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित् ।
गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ।।

श्रीमद्भा०१० ।११ ।५५–५७ ।।

" अहो ! कितने समाश्चर्यकी बात है ! अबतक इस बालकके लिये मृत्युके कारण तो बहुतसे उपस्थित हुए, परन्तु हुआ यह कि जो भी इसका अनिष्ट करने आये, उन्हींका अनिष्ट होगया। "– श्रीपोद्दार महाराजने इतनी पंक्ति ही पढ़ी थी, और उनके हाथकी प्रूफ देखनेके उद्देश्यसे उठायी कलम यहीं आकर ज्यों-की-त्यों स्थिर हो गयी थी, उनके नयन मुँद गये थे, वे तन्मयताकी इस गंभीर दशामें प्रविष्ट हो गये थे ।

वे सचिव जो आये थे, श्रीपोद्दारजीकी दशा देख-देखकर आश्चर्यमें स्तब्ध थे। उन्होंने मुझसे धीरेसे पूछा – क्या भला ऐसे भी सन्त संसारमें हैं ? मैं उन्हें क्या उत्तर देता। धीरेसे इतना ही कह पाया, आप परम भाग्यवान हैं जो आज इन्हें इस दशामें देख सके, अन्यथा इनके बाह्य प्रकट गृहस्थरूपको देखकर तो आप इन्हें मात्र साधारण अच्छा लोकोपकारी मानव ही मानते।

हम लोगोंद्वारा मन्द-मन्द स्वरसे की जानेवाली वार्त्तासे कुछ ही काल पश्चात् श्रीपोद्दार महाराजका ध्यान किंचित् खण्डित हुआ। ज्योंही उनके नेत्र उन्मीलित हुए, उन समागत सचिव महोदयने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। अभी भी उनकी ध्यान-दशा पूरी निवृत्त नहीं हो पायी थी। उन्हें वे सन्देशवाहक सचिव एवं स्वयं मैं भी उनके आराध्य श्रीकृष्णके रूपमें ही दीख रहे थे। अतः उन्होंने अतिशय विनम्रतापूर्वक हम दोनोंको ही भूमिपर सिर टेककर नमन किया। वे सन्देशवाहक तो उनकी इस क्रियापर गदगदा गये थे,

परन्तु मैंने उन्हें समझाया कि अभी पोद्दार महाराज पूरे होशमें नहीं हैं, उन्हें अभी हम सभीमें अपने इष्टकी ही स्फूर्ति हो रही है। अतः चुपचाप शान्त रहिये। श्रीपोद्दार महाराजके नेत्र पुनः निमीलित हो गये थे । शनैः-शनैः उन्हें होश आया। इसबार पूरे नेत्र खोलकर वे हमें देखकर मुसकाये। वे समागत सन्देशवाहकको पहचान गये थे। उन्होंने उन मंत्री महोदयकी कुशल-क्षेम पूछी और सन्देशवाहक महोदयसे उनका पत्र लेकर पढ़ने लगे। ज्योंही पत्रकी दो-चार पंक्ति ही वे पढ़ पाये कि उनके नेत्रोंमें एक साथ भीति, ग्लानि, उत्कण्ठा एवं अनिष्टाशंकाकी छाया झलमल कर उठी थी। उन्होंने एक बार पुनः पूरा पत्र पढ़ा और थोड़े संवरित होकर मंत्री महोदयके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उन सचिव महोदयको भोजनादि करनेका आग्रह किया। सचिव महोदय जलपान तो कर ही चुके थे, उन्हें अन्यत्र कहीं और कार्य भी करने थे, अतः वे शीघ्र विदा लेना चाहते थे। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि पोद्दार महाराज भी उन महोदयको अब विदा ही देना चाह रहे हैं । अतः उन्होंने मुझसे उन्हें गाड़ीतक छोड़ आनेका आग्रह कर दिया। मैं उन्हें गाड़ीतक छोड़ आया। उनके गमनका समाचार देते ही उन्होंने मुझसे पू.राधाबाबा एवं श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको बुला लानेकी बात कही। मैं इन दोनोंको सूचना देने चला गया। मैं समझ गया था कि अब कोई गोपनीय मंत्रणा होनी संभव है , अतः मुझे पुनः उनके कक्षमें नहीं ही जाना चाहिये।

श्रीगोस्वामीजी द्वारा बादमें मुझे पता चला कि "भारत सरकार महात्मा गाँधी-हत्याकाण्डमें श्रीपोद्दारजी एवं श्रीबजरंगलालजीको षड़यन्त्रकारी मानकर गिरफ्तार करना चाह रही है। श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठिया,जो गीताप्रेसके मैनेजर थे, उन दिनों हिन्दू महासभाके भी उच्च पदाधिकारी थे। गीताप्रेसको भी जब्त करके धार्मिक 'कल्याण' मासिक पत्रको श्रीविनोबाजी भावेके विचारोंका प्रतिनिधि पत्र बना दिया जाय – ऐसी सरकारकी भीतरी इच्छा है । यह सब कार्यवाही सीधे प्रधानमंत्री कार्यालयसे संचालित हो रही है एवं तत्कालीन गोरखपुर-कलक्टर जो अन्य धर्मावलम्बी है, इस प्रकारके आदेश सीधे दिल्लीसे प्राप्त कर रहा है। इस सब कार्य-योजनामें उत्तरप्रदेश सरकारसे भी गोपनीयता बरती जा रही है" – इसी आशयका परम गोपनीय पत्र लेकर उत्तरप्रदेश सरकारके किसी प्रमुख मंत्रीने श्रीपोद्दार महाराजको गोरखपुरसे तत्क्षण ही कहीं अन्यत्र चले जानेकी आत्मीयतापूर्ण व्यक्तिगत राय दी है। और

वे शीघ्र ही गोरखपुरसे किसी अज्ञात स्थानको जा रहे हैं । ''

मेरे पूर्वाश्रमके मामा श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी अत्यन्त दुखी होकर कह रहे थे – ''जिन श्रीगाँधीजीका श्रीपोद्दार महाराजके प्रति पुत्रवत् परम आत्मीय प्रेम था और जो उन्हें अतिशय अपने-से-अपना पारिवारिक स्वजन मानते थे , वर्षों श्रीजमनालालजी बजाजकी कोठीमें बम्बईमें श्रीपोद्दारजीने उनकी सेवा की है, उन पोद्दारजी पर अपने पितातुल्य गाँधीजीकी हत्याका लाञ्छन श्रीजवाहरलालजी लगावें, – इस बातसे श्रीपोद्दार महाराज बहुत ही व्यथित हैं। वे तो गिरफ्तार होना भी चाह रहे हैं, परन्तु पू.राधाबाबाकी ऐसी राय है कि उन्हें उन परमात्मीय मंत्री महोदयकी रायकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये और एक बार किसी अनुकूल स्थानमें चले जाना चाहिये, जहाँ उनके हितू एवं अनुकूल राज्याधिकारी हों। मंत्री महोदयके पत्रमें स्पष्ट आदेश है कि आज रात्रिमें ही संभवतः कलक्टर उन्हें गोरखपुर रहनेपर गिरफ्तार करले, अतः उन्हें तत्क्षण ही गोरखपुरसे हट जाना है।''

अति शीघ्र श्रीपोद्दार महाराज अपनी धर्मपत्नी, परम सेवक श्रीराम-सनेहीजी एवं पू गुरुदेव श्रीराधाबाबाको अपने साथ लेकर परमावश्यक वस्त्रोपकरण सहित श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठियाके साथ अपनी मोटरकारमें किसी गोपनीय अज्ञात स्थानको चले गये। 'कल्याण' मासिक पत्रके सम्पादनका कार्य उन्होंने अपने धर्मभ्राता एवं अनन्य सहयोगी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके कंधोंपर डाल दिया। बिदाईके समय मैं साश्रुनयन खड़ा एकटक पू. गुरुदेवकी ओर देख रहा था। प्रेमजनित अनिष्टाशंकासे सभी सम्पादकीय विभागके लोग और वाटिकाके अन्तेवासी अश्रु टपका रहे थे।

विदा होते समय अचानक पू.गुरुदेवने मुझे अपने निकट बुलाया। अतिशय प्यारसे उन्होंने मेरे कन्धेपर अपना हाथ रखा और कहने लगे – ''भैया ! विदा होते समय तुमपर मैं एक गुरुतर दायित्व दे जा रहा हूँ। इस आसन्न विपद्कालमें यदि श्रीपोद्दारजी गिरफ्तार कर लिये जाते हैं, तब तो मैं खुली राजनीतिमें उतर आऊँगा और तू मेरे पास चले आना। और यदि वे गिरफ्तार नहीं किये जावें तो इस आसन्न विपत्तिका निराकरण व्यावहारिकरूपसे उनके अनेक प्रभावशाली सहयोगी मित्रगण करेंगे ही । फिर भी उनके प्रयास सफल होंगे ही, यह इस समय कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हाँ, तू मेरा प्रतिनिधि होकर यदि प्रतिदिन आजसे ही दो घण्टे सायंकाल निश्चित् ठीक

पाँच बजेसे सात बजेतक समयपर भगवन्नाम-संकीर्त्तन प्रारंभ कर देगा और जबतक हम सुरक्षित नहीं लौट आवें, तबतक विना व्यवधान संकीर्त्तन करता रहेगा, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि अमोघ भगवत्कृपा तेरी भावनाकी रक्षार्थ क्रियाशील हो उठेगी, और हममेंसे किसीका बाल भी बाँका नहीं होगा। 'कल्याण', गीताप्रेस, सब सुरक्षित रह जावेंगे।''

पू. गुरुदेवके मेरे प्रति वात्सल्यपूर्ण विश्वासको देखकर मैं पुलकित हो उठा। मैंने उसी समय उनके चरण छूकर प्रतिज्ञा की कि जबतक वे सकुशल नहीं लौटेंगे, मैं उनके द्वारा निर्धारित समयपर बिना व्यवधान नियमित संकीर्त्तन प्रारंभ कर दूँगा। मेरा आश्वासन पाकर पू. गुरुदेव प्यारसे मेरा सिर सहलाते हुए पू. पोद्दार महाराजके साथ प्रस्थान कर गये।

पू.गुरुदेवके प्रस्थानके उपरान्त मैं विचारोंमें खो गया – ''श्रीपोद्दार महाराज तो भक्ति एवं भगवत्प्रेमकी जीवन्त प्रतिमा हैं। जिनके अन्तःकरण एवं बहिःकरण दोनों सदैव नराकृति परब्रह्मको अपने भीतर-बाहर सर्वत्र अपरोक्ष प्रत्यक्ष निरखते रहते हैं ,जो एक अभिनव चिन्मय रससे सदैव प्लावित रहते हैं, जिनकी निद्रा एवं स्वप्न भी उस चिन्मय रसमें सदा निमग्न रहते हैं, उन विशुद्ध चिदानन्द-रस-सुधा-सरोवर श्रीपोद्दार महाराजके रोमका भी भला कौन अनिष्ट कर पावेगा ? जिनके प्राकृत त्रिगुणात्मक हृदयरूप मायिक कीचमें भी अनिन्द्यसुन्दर श्रीकृष्णरूप पद्म विकसित रहता है, उस कृष्णपद्मका माधुर्य इतना असमोर्ध्व है कि जिसे उनके पूर्ववर्त्ती सन्त अनुभव कर पाये या नहीं, कहना संदिग्ध है । सच्चिदानन्दकन्द नवनीरदवपु श्रीकृष्णचन्द्रकी अनुपम रूपमाधुरीका विस्तार जैसा श्रीपोद्दार महाराजके हृदयमें सदैव निर्बाध झलमलाता रहता है, वैसा मधुर मनोहर रूप धारण करके वे प्रापञ्चिक जगत्‌में आजके पाँच हजार दर्ष पूर्व भी गोकुल-वृन्दावनमें प्रकटे थे या नहीं, द्रष्टा, साक्षीके अभावमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता, ऐसे राधा-भाव-भावित-मति सन्तका ये आसुरी प्रापंचिक राजनेता क्या कुछ भी अनिष्ट कर पायेंगे ? कदापि नहीं, कदापि नही।''– इस प्रकार सोचता हुआ मैं अपने निवासकी ओर बढ़ गया । इस समय मध्याह्नके दो ही बजे थे।

मुझे सायंकालीन संकीर्त्तनकी तैयारी करनी थी। संकीर्त्तनमें प्रयोगमें आनेवाली ढोलक अनेक दिवसोंसे कसी नहीं गयी थी, उसकी रज्जु भी अनेक स्थानोंसे विच्छिन्न थी । ढोलककी स्याही भी पुरानी पड़ गयी थी जिससे

उसकी गूँज नहींके बराबर थी। हारमोनियमकी भी धौंकनी फट गयी थी, वह भी पूरी मरम्मत माँग रहा था। झाँझोंमें भी न तो गद्दे थे और उनकी डोरी भी बदलनी आवश्यक थी । कांस्य झालरका हत्था लापता था। उसे लटकानेका तार भी खण्डित था। मैंने तत्क्षण ही साइकलके कैयियरमें हारमोनियम बाँधा, उसके हैण्डिलमें ढोलक लटकायी, झोलेमें झालर, झाँझें भरीं और सभीकी मरम्मत कराने बाजारकी ओर चल पड़ा। समयके पूर्व ही यह कार्य सम्पन्न करके ही मुझे लौटना था।

भगवत्कृपावश सभी निर्माणकार्य समयपर हो गये। हारमोनियम एवं ढोलक कुछ समय माँग रहे थे, अतः मैंने इनकी एवजमें मरम्मत करनेवालेकी दुकानसे दूसरा अच्छा हारमोनियम और ढोलक ले लिये। इस प्रकार संकीर्त्तनकी पूरी तैयारी करके मैं समयसे पाँच–दस मिनट पूर्व ही गीतावाटिका पहुँच पाया।

मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा जबकि मैंने देखा कि वहाँ संकीर्त्तन समारंभ करनेकी सभी तैयारी पूरी हो गयी है । लोग मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। भगवान्की पूजाके लिये मेरे मामाजी श्रीचिम्मनलालजी भी उपस्थित हैं। चन्दन, केसर आदि घिसे हुए तथा सभी पदार्थ यथास्थान पात्रोंमें रखे हैं । दीपक भी प्रज्वलित है। निर्मल धूपकी सुगन्ध सर्वत्र परिव्याप्त है। गीताप्रेससे पहलवान दरबान ढोलक बजानेके लिये फोन करके बुलाया जा चुका है। संकीर्त्तनकी सभी तैयारी भगवत्कृपासे मेरे आगमनके पूर्व ही सम्पन्न हो चुकी थी।

भगवद्विग्रहका यथासमय पंचोपचार विधिसे मेरे पूर्वाश्रमके मामाजीने पूजन किया और"अच्युतं केशवं रामनारायणं,कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम् " श्रीमदादिशंकरस्वामि–विरचित नामावलिसे यथासमय संकीर्त्तन प्रारंभ होगया।

विद्युत्की भाँति यह समाचार वाटिका एवं आसपासके सभी परिजनोंके घरोंतक पहुँच गया था कि उन सबके प्राणप्यारे जीवनसर्वस्व भाईजी श्रीपोद्दार महाराजके सकुशल लौट आनेके लिये संकीर्त्तन प्रारंभ होगया है। यह समय गृहस्थ स्त्रियोंके लिये भोजन–निर्माणका रहता था, परन्तु सभी स्वजन लोग सुविधा–असुविधाका बिना ध्यान किये एकत्र होते गये। थोड़े ही समयमें मैंने देखा, संकीर्त्तन करनेवालोंकी संख्या शताधिक हो चुकी थी।

मैं आश्चर्य कर रहा था कि वाटिका–निवासियोंमें इतना उत्साह कैसे समाया हुआ है। सभी संकीर्त्तन करनेवाले ठीक ताल–सुरमें लय बाँधकर

संकीर्त्तन कर रहे थे। कहीं कुछ भी असंबद्ध नहीं, असंगत नहीं, आज तो प्रत्येक व्यक्ति पूरा नाम–रसमें डूबा दत्तचित्त हो, संकीर्त्तन कर रहा था। किसीका उत्साह शिथिल नहीं था। मैं अनेकों बार गीतावाटिकामें नाम–संकीर्त्तन संचालित कर चुका था, परन्तु मैं देख रहा था कि आज प्रथम अवसर है कि प्रत्येक वाटिकावासीके नेत्र नामानन्दातिरेकसे रह–रहकर छलक रहे हैं। सभी अपने भीतरी मनसे अपने आराध्य नन्दनन्दनके सम्मुख अपने मनकी मंगलकामना निवेदन कर रहे हैं और सभीके दृगोंसे अश्रुका निर्झर झर रहा है। मैं एक–एक प्राणीके मुखोंको निहार रहा था, इधर केदारनाथजी कानोड़ियाके नेत्रोंसे अश्रुकी लोर प्रवाहित है, तो पासमें ही बैठी उनकी धर्मपत्नी 'पानकी मैया' भी सुबुक रही है । इधर पूरण महाराज, रसोइया सिसकते हैं तो उधर बर्तन मलनेवाला, गब्बू कहार ताली बजा–बजाकर नृत्योत्सुक है । श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र' अपनी मौजमें ताली बजा रहे हैं तो श्रीशिवनाथजी दुबे भी नयन मूँदे स्थिर, शान्त, प्रार्थनारत हैं।

श्रीगोस्वामीजीकी मधुरतम परम सुरीली स्वरलहरी संकीर्त्तनका अन्तरा गा रही थी –"श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं , राधिकानायकं कृष्णचन्द्रं भजे। जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे।" श्रीगोस्वामीजीका करुणारसपूरित स्वर–स्पर्श सभी वाटिकावासियोंको रक्षोघ्न मंत्रवत् प्रतीत हो रहा था। सभी वाटिकावासी जो इस संकीर्त्तनमें बैठे थे, मानों मन–ही–मन श्रीपोद्दार महाराजके सकुशल लौट आनेके लिये अपने–अपने इष्टसे करुण, मूक, क्रन्दन–भाषामें निवेदन कर रहे थे – हे अच्युत ! हे केशव ! हे नारायण ! हे राम ! त्राहि, त्राहि प्रभो ! हे दयासिन्धो ! करुणामय ! जगत्पते ! रक्षा करो ! रक्षा करो ! हे श्रीधर ! हे माधव ! रक्षा करो ! अभयदान करो !

उस दिवस संकीर्त्तन करते–करते श्रीगोस्वामीजीको प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि एक बालक जिसका समुदित चन्द्रके समान तो मुख है, विद्युत्‌रेखा–सी जिसके नेत्रोंकी शोभा है, दुष्प्रधर्ष तेज जिसके रोम–रोमसे छिटक रहा है, जिसके सिर पर घनकृष्ण केश हैं, समस्त अंगोंकी आभा शारदीय मेघके समान है, उस कीर्तनमण्डपमें विराजित चतुर्दिक् इतस्ततः सभीकी मुखमुद्रायें देखता, मुसका रहा है। श्रीगोस्वामीजी उसे देखकर विस्मित हो रहे थे, क्योंकि उन्हें वह गौरवर्ण बालक अस्थिमज्जा–मेदमांस–निर्मित प्राकृत प्रतीत नहीं हो रहा था। उन्हें यह भी विस्मय हो रहा था कि संकीर्त्तन करनेवाले लोग

यदाकदा नृत्य करते उस बालकके भीतर भी प्रवेश कर जाते हैं और तब उसके आरपार मिकल जाते हैं । जो ऐसा करते हैं उनपर वह बालक और अधिक प्रेमिल हो उठता है । गोस्वामीजीने मन-ही-मन उस बालकको भगवान् हलधर या बलदेवजीके रूपमें पहचान लिया एवं उसे प्रणाम किया। वह कथन मात्रका ही बालक था। सहसा वह संकीर्त्तनध्वनिमें स्वयं भी नृत्य करता उनके पास आया और उनके कानोंमें अतिशय मधुर स्वरमें यह सन्देश देने लगा कि 'भक्तराज पोद्दार महाराजका कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा, निश्चिन्त रहें। गीताप्रेस एवं कल्याणका कार्य भी यथावत् ज्यों-का-त्यों चलता रहेगा।''

यह आश्वासन पाकर श्रीगोस्वामी महाराज तो आनन्दसे खड़े हो गये। मैं उनका भाव-परिवर्तन देख रहा था। उनके खड़े होते ही मैंने भी हारमोनियम-वादन स्थगित कर झालर बजानी प्रारंभ कर दी । श्रीगोस्वामी महाराजने **''अच्युतं केशवं''** संकीर्त्तन स्थगित कर **'जय हरि गोविन्द राधे गोविन्द''** नामध्वनि प्रारंभ कर दी थी। अब तो संकीर्त्तनमें ऐसा रंग जमा कि सभी देह-विस्मृत हो गये।

बाबू गंगासिंहजीका अति भावपूर्ण कबूतरीनृत्य कुछ भाव-विक्षेप अवश्य कर रहा था, परन्तु उन्हें निवृत्त करना किसीके भी वशकी बात नहीं थी। श्रीरघुवरदयालजी, श्रीमुरलीधरजी, श्रीरामदासजी जालान, श्रीसुखदेवबाबू आदि सभी व्यक्ति जो गीताप्रेससे पू. पोद्दार महाराजको विदा देने आये थे इतने भाव-विभोर हो रहे थे कि सब कुछ अनिर्वचनीय लग रहा था।

यह संकीर्त्तन कुछ कालतक तो **'जय हरि गोविन्द राधे गोविन्द'** होता रहा पश्चात् **'राधे-राधे'**की नामध्वनिमें पर्यवसित हो गया। उस संकीर्त्तनको हुए आज लगभग ४८ वर्ष हो गये हैं परन्तु उसकी स्मृति अबतक ज्यों-की-त्यों बनी है । दिवसका पर्यवसान समीप था। परन्तु वाटिकावासियोंका उत्साह शिथिल नहीं हुआ था, संकीर्त्तनानन्द एकरस चल रहा था। मैं तो आज भी जब अपनी किशोरावस्थाके अति सुभग दिवसोंकी स्मृति करता हूँ तो गीतावाटिकाको अणु-अणुसे उसी विशुद्ध सत्वमयी आनन्दधारामें झूमती, मुखरित देखने लगता हूँ । आज तो वह निष्प्राण, मृतप्राय है, क्योंकि उसकी आत्मा श्रीपोद्दार महाराज और उसके प्राण पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा दोनों ही अपनी इहलीला समाप्त कर गये हैं ।

यह संकीर्त्तन अनवरत तबतक होता रहा, जबतक पू.गुरुदेव एवं

पोद्दार महाराज लौटकर गोरखपुर नहीं आ गये। जैसी कि आशंका थी विपंत्तियाँ तो आनी ही थीं । वाटिकाके लिये पुलिसने तलाशी वारंट जारी कर दिया। श्रीपोद्दार महाराज एवं चाँदगोठियाजीकी अनुपस्थितिमें सारे गीताप्रेसका चप्पा-चप्पा पुलिसद्वारा तलाशा गया। वाटिका और श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके घरतककी तलाशी ली गई । वाटिकामें श्रीपोद्दार महाराजके पुस्तकालयकी प्रत्येक पुस्तकतक पुलिसने छान मारी किन्तु उसे कोई भी वस्तु सन्देहप्रद नहीं मिली। मिलती तो तभी, जब कुछ सन्देहास्पद कार्य होता।

जो गीताप्रेस अपनी अपरिसीम भक्तिभावमयी सुख-शान्ति और कल्याण-भावनासे विश्वको आप्यायित कर रहा था, उसके पास कल्याण, शिव, आनन्द, मंगल एवं शुभके सिवा हो भी क्या सकता था ? श्रीपोद्दार महाराजके पास तो पोत(खजाना) ही भगवान्के पावनतम नामका था, वे तो इसी पवित्रतम शिव-साधनसे जीवमात्रको परमानन्दसिन्धुमें निमग्न कर देनेका संकल्प लिये थे, उनके पास ऐहिक-आमुष्मिक(लोक-परलोक सम्बन्धी) मंगल, परम मंगलमयी सम्पादन-सामग्रीके सिवाय हो भी क्या सकता था ? दैत्यविदलित इस भारतको जो भगवद्बलसे बलान्वित होकर दैवी सम्पदासे आपूरित करनेका व्रत लिये थे, उन श्रीपोद्दार महाराजके पास विशुद्ध सेवाभाव, परोपकार, सर्वहित, निर्मल चरित्र, कारुण्य, अनन्त भक्तिभाव-परिभावित मसृण हृदय, भगवदैश्वर्य-संकीर्त्तन, आत्मभाव, विशुद्ध प्रेम आदि अलौकिक दैवी भावोंके अतिरिक्त होगा भी क्या ? जो भी पुलिस अधिकारी तलाशी लेने आये थे, सभी भक्ति-साहित्यको पढ-पढकर सुख-सागरमें निमग्न हुए, वाटिकाके परिजनोंके निर्मल सेवा-व्यवहारसे आप्यायित हो, विदा हुए।

वस्तुतः उन दिनों जैसी विशुद्ध प्रीति, निष्कपट सेवाभाव, अगाध शान्ति गीतावाटिकामें प्रवाहित थी, वह सर्वथा स्वसंवेद्य एवं अत्यन्त अनोखी ही थी। श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजीको जो प्रथम दिवसके संकीर्तनमें अनुभूति हुई थी, वह उन्हींने जब पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा, श्रीपोद्दार महाराजके सहित पुनः गीतावाटिकामें लौटे थे , तब सुनाई थी। श्रीपोद्दार महाराजने लौटकर जब दूसरे दिवस सत्संग कराया था, तब मुझसे एक पद गाकर सुनानेको कहा था और मैंने उस दिवस गाया था–

जो सुख ब्रजमें एक घरी ।
सो सुख तीन लोकमें नाहीं, धनि यह घोषपुरी।।

अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरे, द्वारैं रहति खरी ।
शिव॰ सनकादि शुकादि अगोचर,जहँ अवतरे हरी ।।
धन्यधन्य बड़भागी गोपी निगमनि सही परी ।
ऐसे सूरदासके प्रभुकौं लीन्हौ अंक भरी ।।

{श्रीसूरदासजीके इस पदको मेरे द्वारा सुनाये जानेका भीतरी भाव जो था उसे परम चतुर श्रीपोद्दार महाराजने पहचान लिया था अतः श्लेषात्मक अर्थ एवं भावार्थ दोनों नीचे दिये जा रहे हैं}

जो सुख (अभूतपूर्व आत्मीयताभरी शान्ति) इस व्रजमें(गीतावाटिकामें)इन दिनों एक घड़ी(मात्र२४मिनट)निवास करनेमें है, वह त्रिलोकी(स्वर्ग, पृथ्वी एवं पाताल)में कहीं नहीं है। यह भगवान् श्रीकृष्णके परमात्मीय प्रेमी जन – नन्दादि गोपोंकी पुरी ब्रजभूमि(श्रीपोद्दार महाराज एवं श्रीराधाबाबा-जैसे ब्रजभावभावित सन्तोंकी निवासभूमि, गीतावाटिका)सचमुच धन्य है, धन्यातिधन्य है। यहाँ इस ब्रजभूमि(गीतावाटिका) में आठों सिद्धियाँ, एवं नवों निधियाँ हाथ जोड़े सेवार्थ खड़ी रहती हैं। {परन्तु भगवत्प्रेमरूपी परम दुर्लभ सम्पदाको प्राप्त कर श्रीपोद्दार महाराज एवं श्रीराधाबाबा निरन्तर भगवानके निर्मल ध्यान और भगवद्यशगानमें ही मस्त रहनेके कारण इनकी ओर ताकते भी नहीं हैं} सत्य है जहाँ शिव-सनकादि एवं शुकदेवादिको भी दुर्लभ, अप्राप्त, अगोचर भगवान् श्रीकृष्ण नराकृतिरूपमें अवतरित हुए हों, वहाँ दृष्टि भगवान्पर केन्द्रित रहेगी न कि इस नाशमान् क्षणभंगुर दुःखयोनि अष्टसिद्धियों एवं नवनिधियों(सम्पदाओं) पर। वेदोंने जिसके महासौभाग्यकी साक्षी दी है, ऐसी गोपी (गोपीभावापन्न – ये दोनों महाप्रेमावतार सिद्ध सन्तद्वय)धन्य है, धन्यातिधन्य है। श्रीसूरदासजी कहते हैं कि इस गोपी(गोपी-भावसम्पन्न इन सन्तों)ने मेरे प्रभु श्रीकृष्णको अपने अंकमें(हृदय, मन आदि अन्तःकरण-चतुष्टय एवं बहिःकरणों – नेत्र, कान, रसना, त्वचादिमें)धारण किया हुआ है।

श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालको पू.गुरुदेव द्वारा आत्म-प्रतिनिधित्वका दान

चौथा अध्याय

पूर्व प्रसंगमें मैं उन हेतुओंपर प्रकाश डाल चुका हूँ, जिन हेतुओंसे श्रीपोद्दार महाराजको पू. गुरुदेवको साथ लेकर अज्ञातवासकी तरह ही अनेक स्थानोंमें जाना पड़ा। इस अवसरपर वे कभी बाबा राघवदासजीके पास बरहज, कभी उत्तर प्रदेशके तत्कालीन मुख्यमंत्री श्रीगोविन्दवल्लभजी पंतके पास लखनऊ, कभी दिल्ली, अयोध्या एवं डालमिया दादरी गये।

एक दिवस जब वे मोटरगाड़ीमें बैठे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके साथ यात्रा कर रहे थे, तो अचानक ही उनसे बोल उठे –"बाबा ! यदि कहीं मेरी मृत्यु हो गयी तो आप तो तुरन्त ही अवधूतव्रत लेकर वृन्दावनकी ओर चल पड़ेंगे और वहाँ रूप-सनातन गोस्वामी-बन्धुओंकी जीवनशैली अपनाते हुए एक दिवस एक वृक्षके नीचे, तो दूसरे दिवस, दूसरे वृक्षके तले रहकर शेष जीवन व्यतीत करेंगे। किन्तु मेरी तो ऐसी रुचि है कि मेरा देहावसान होनेके पश्चात् आप सावित्रीकी माँ, (मेरी धर्मपत्नी)की जब तक वह जीवित रहे सम्हाल करें।"

श्रीपोद्दार महाराजने उस समय पू.गुरुदेवसे यह बात इस गम्भीरता और अवसादसे भरकर कही थी कि पू. गुरुदेव उसे हलकी-फुलकी विनोदकी बात न मान, सत्य ही उनकी रुचि मान बैठे। फिर भी उन्होंने उसकी गंभीरताको ठोक-बजाकर जान लेनेके उद्देश्यसे श्रीपोद्दार महाराजके मुखकी ओर अपनी दृष्टि उठायी।

जैसे ही पू.गुरुदेवकी दृष्टि श्रीपोद्दार महाराजके आननपर पहुँची, वे चकित, हतप्रभ हो उठे। पू.गुरुदेवकी सतत यही प्रगाढ़ आस्था थी कि उनके दृश्यमात्रको धारण किये, उनके प्रियतम श्रीकृष्ण ही सर्वत्र लीलायमान हैं, किन्तु वे श्रीकृष्ण इन पोद्दार महाराजके कलेवरमें और अधिक सुस्पष्ट, सुव्यक्त हो उठते हैं। किन्तु आज उनकी दृष्टि जैसे ही श्रीपोद्दार महाराजके आननपर ठहरी, उन्हें कुछ और ही चमत्कार दृष्टिगोचर हो रहा था।

पू. गुरुदेव यह देखकर दंग थे कि श्रीपोद्दार महाराजका समग्र प्राकृत पृथ्वीतत्व जलतत्वमें, जलतत्व तेजतत्वमें, तेजतत्व वायुतत्वमें, और वायुतत्व

आकाशतत्वमें सुविलीन होकर, उनका आकाशतत्व उस क्षण महासत्वसिन्धुमें संसिक्त, आप्यायित, पूर्णतया विलीन ही हो चुका है। श्रीपोद्दार महाराज कोई प्राकृत पिण्ड, कलेवर रहे ही नहीं हैं, बस, महारससिन्धु होकर लहरा रहे हैं।

पू.गुरुदेव विचार कर रहे थे कि यह तो महाप्रलयमें भी नहीं होता। किसी ऋषि-महर्षिकी भी अव्याकृत प्रकृति अपनी सत्ता ही महासत्व-रससिन्धुमें विलीन कर दे, यह तो किसी शास्त्रमें उदाहरण रूपमें भी आजतक मेरे द्वारा पढ़ने-सुननेमें नहीं आया। फिर मेरे प्रियतम नन्दनन्दन मुझे यह दर्शन कैसे करवा रहे हैं ?

पू.गुरुदेव इस प्रकार चकित हो ही रहे थे कि श्रीपोद्दार महाराज- रूप लहराता महारससिन्धु पुनः गर्जन कर बैठा –"बाबा ! आप तो मेरे देहावसानके पश्चात् तत्क्षण ही अपनी दृष्टि झुका लेंगे और अवधूतवृत्ति लेकर वृन्दावनकी ओर प्रस्थान कर जावेंगे, किन्तु मैं तो यही चाहता हूँ कि आप मेरी मृत्युके पश्चात् सावित्रीकी माँकी सम्हाल करें। "

पू.गुरुदेव साश्चर्य देख रहे थे उनके सम्मुख मोटर, पथ, ड्राइवर –सभीकी सत्ता विलीन है और पोद्दार महाराज-रूप प्राकृत कलेवर जहाँ उनके समीप आसीन था, वहाँ सम्पूर्ण माधुर्यरसके आधार उनके प्रियतम श्रीकृष्ण, उनकी प्रिया, साथ ही समग्र वृन्दावनधाम पूर्णतया व्यक्त है। वे मुग्ध थे, सत्य तो सत्य ही है, वह किसी मान्यता अथवा ज्ञानकी अपेक्षा थोड़े ही रखता है ?

फिर भी पू.गुरुदेवने श्रीपोद्दार महाराज-रूप उमड़ते लीला-महाभावसिन्धुसे तीन बार लगातार प्रश्न किये – "प्रभो ! आप सत्य-सत्य अपने अन्तर्की रुचि बताइये, क्या आप मुझसे ऐसा ही चाहतें ? तीनों ही बार वह महाभावसिन्धु पू.गुरुदेवके सम्मुख इसी प्रकार गर्जन कर उठा – " मेरी तो ऐसी ही रुचि है कि आप मेरे स्थूल कलेवरके अवसानके पश्चात् सावित्रीकी माँकी सम्हाल करें।"

अब तो पू.गुरुदेवके सम्मुख केवल अपना निर्णय परिवर्तन कर लेना ही एकमात्र अवलम्ब रहा था। तीनों बार इस स्पष्ट आदेशको सुननेके पश्चात् पू.गुरुदेवने श्रीपोद्दार महाराजका रूप धरे अपने आराध्य-देवको तथास्तु कह दिया।

पू.गुरुदेवके मुखसे जैसे ही यह 'तथास्तु' उच्चारण हुआ, उसी समय उनके सम्मुख श्रीपोद्दार महाराज, मोटरगाड़ी, और सभी जागतिक, प्राकृत देश

एवं काल व्यक्त होगये। पू. गुरुदेवने इसी क्षण संकल्प कर लिया कि अब वे श्रीपोद्दार महाराजके देहावसानके पश्चात् वृन्दावन नहीं जावेंगे और जहाँ भी इनके प्राकृत पंचभूतोंकी चिता जलायी जायेगी, वे उसी चितास्थलीको वृन्दावन मान, वहीं रह जावेंगे। साथ ही यदि श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी उस समयतक दिवंगत नहीं हुईं तो वे उनकी पुत्रवत् उसी सम्मानसे सँभाल करेंगे, जैसी सँभाल श्रीपोद्दार महाराज करते थे।

श्रीपोद्दार महाराज द्वारा सौंपे गये इस दायित्वको पूरी शक्तिसे वहन करनेको पू.गुरुदेव तत्पर तो हो गये, किन्तु जैसे ही उनका यह संकल्प हुआ, उसकी पूर्त्ति एवं अपने भावानुसार उसे निर्वाह करनेमें उन्हें अनेक कठिनाइयाँ भी मुख-बाये खड़ी दृष्टिगोचर होने लगीं।

प्रारंभिक कठिनाई तो श्री माताजी(श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी)का स्वभाव ही था। श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी साधु-ब्राह्मणोंके प्रति अतीव श्रद्धा रखनेवाली, धर्मभीरु, आस्तिक महिला थीं। उन्हें पुराणों, स्मृतियों और साधु-महात्माओंके उपदेशोंपर शब्द-शब्दशः अगाध श्रद्धा थी। अतः यह उनके लिये संभव ही नहीं था कि वे पू.गुरुदेव-जैसे ब्राह्मणवंशोत्पन्न चतुर्थाश्रमी संन्यासीसे मरणान्तक कष्ट-पीड़ामें भी शरीरसेवा स्वीकार करलें। उन्होंने जिस संन्यासीको यावज्जीवन पुत्रवत् भिक्षा करायी है, वह ब्राह्मण विद्वान् संन्यासी उनकी सेवा करे, उन्हें यह स्वीकार होना कदापि संभव नहीं था।

दूसरे पू.गुरुदेव संन्यास-मर्यादाके कट्टर समर्थक थे और किसी भी स्त्रीदेहके संस्पर्शसे यावज्जीवन विवर्जित रहे थे। वे किसी आसन्न भीषण रोगके समय, अपने दायित्वके निर्वाह करनेमें, माँकी सेवार्थ उन्हें अपने हाथोंसे कैसे संस्पर्श कर पावेंगे, यह हिमालयके समान दूसरी कठिनाई उनके पथको रोके खड़ी थी।

अपनी इन गंभीर विवशताओंका हल अन्ततः क्या हो ? पू.गुरुदेवने इन सभी दुरूह प्रश्नोंको अपने आराध्य श्रीकृष्णके सम्मुख रख देना ही उचित माना।

पू.गुरुदेवके आराध्य श्रीकृष्णने उनका यही कहकर समाधान कर दिया कि " तुम अपना कोई प्रतिनिधि इन सेवाओंके लिये नियुक्त कर दो । उस तुम्हारे प्रतिनिधि द्वारा की जाने वाली सेवाका अर्थ यही होगा कि वह सेवा कृत, कारित एवं अनुमोदित-न्यायसे, प्रच्छन्नरूपसे तुम्हारे द्वारा ही हो रही है,

यही माना जायगा। प्रथमतः वह व्यक्ति वैश्य होना चाहिये क्योंकि किसी भी वैश्येतर उत्तम कुलके व्यक्तिसे श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी सेवा कदापि स्वीकार नहीं करेंगी। "

" अभी तो श्रीपोद्दार महाराज गृहस्थ होनेके नाते अपनी धर्मपत्नीका समग्र आर्थिक दायित्व निर्वाह कर रहे हैं, किन्तु जब वे नहीं रहेंगे, उस समय माताजीका आर्थिक दायित्व कौन निर्वाह करेगा ? माताजी स्वभावसे उदार और अपने परिजनोंके प्रति पर्याप्त मोही हैं। जिस सम्मान और सम्पन्नतासे वर्तमानमें उन्हें श्रीपोद्दार महाराज रख रहे हैं, उसी सम्मान और सम्पन्नताके सहित तुम उनका दायित्व निर्वाह कर पाओ, तभी उनकी सँभाल कोई अर्थ रखेगी। अतः जिसे तुम अपने दायित्वका प्रतिनिधित्व देना चाहो, वह व्यक्ति सभी प्रकारसे कर्मठ एवं विविध रजोगुणी प्रवृत्तियोंमें कुशल अवश्य हो।"

पू.गुरुदेव अपने आराध्य श्रीकृष्णसे यह समाधान पाकर कुछ आश्वस्त तो हुए, परन्तु ऐसा त्यागी तथा कुशल व्यक्ति कौन संभव है, जो उन्हें अपने–आपको पूर्णतया समर्पित कर दे । यह समर्पण भी कोई एक-दो दिवसका भावुक प्रयास तो था नहीं, अतः उनकी यह समस्या ज्यों-की-त्यों सम्मुख खड़ी ही थी।

एक दिवस उन्होंने इस विषयमें अपने सर्वाधिक विश्वस्त गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीसे राय की । श्रीचिम्मनलालजीके मतमें इस कार्यके लिये सर्वाधिक उपयुक्त दो ही व्यक्ति थे– प्रथम, श्रीपोद्दार महाराजके जामाता श्रीपरमेश्वरप्रसाद फोगला, तथा दूसरे, श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल । श्रीपरमेश्वर प्रसाद फोगला पू.गुरुदेवको पूर्णतया समर्पित थे और पू.गुरुदेवकी इच्छापर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देनेको सदैव समुत्सुक भी थे, किन्तु जामाता होनेके नाते न तो पुत्रीसे अर्थसेवा लेना माताजीको स्वीकृत हो सकता था, न उनसे शरीरसेवा ग्रहण करनेकी भी मानसिकता उनमें थी। फिर पोद्दार महाराजको भी यह दायित्व अपने जामातापर ही डालना रुचिकर होता तो वे पू.गुरुदेवको यह दायित्व सौंपते ही क्यों ? इन विचारोंके कारण श्रीपरमेश्वर प्रसादजी फोगलाका नाम तो पूर्णतया निरस्त ही होगया।

अब अन्य विकल्प मात्र श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवालका ही बचा था। इसी विकल्पको पू.गुरुदेवने शत-प्रतिशत स्वीकार भी कर लिया।

पू.गुरुदेवने श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवालकी रुचि भी जाननी चाही और उन्हें पूरा सन्तोष तब हुआ, जब श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवालने इस दायित्वको वहन करनेकी अपनी पूरी समुत्सुकता प्रकट करदी।

यहाँ श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालके जीवनके सम्बन्धमें मैं दो शब्द लिखना उपयुक्त समझ रहा हूँ।

श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालका जन्म राजगढ़, जिला चूरू (राजस्थान)में हुआ था। राजगढ़ तत्कालीन बीकानेर स्टेटकी, रतनगढकी तरह ही एक तहसील थी तथा चूरू जिलाके अन्तर्गत थी। राजस्थानमें वैश्य परिवारके अग्रवाल लोग अधिकांशमें व्यापार ही करते हैं, परन्तु श्रीकृष्णचन्द्रजीके परिवारके लोग सुशिक्षित, सुसंस्कृत तथा ऊँचे पदोंपर आसीन थे। इनके एक अग्रज बीकानेरमें वकील थे तथा एक अग्रज चूरूमें प्रोफेसर थे। इनके दो छोटे भ्राताओंने आगरा विश्वविद्यालयसे सवोच्च अंकोंसे प्रथम श्रेणीमें डिग्री ली थी तथा इनका सभी परिवार गाँधीजीका अनुयायी होनेके कारण सच्चाई, ईमानदारी, सादगी एवं परिश्रमशीलताका ही आदर्श अपनाये हुए था। यद्यपि ये सभी ही आस्तिक थे किन्तु कर्मको ही भगवान्‌की पूजा मानकर अपने कर्तव्यकर्ममें पूर्णतया संलग्न रहते थे।

गोसेवाके कार्यसे सन् १९३९ई.में श्रीपोद्दार महाराज जब रतनगढसे राजगढ पहुँचे तो श्रीकृष्णचन्द्रजीके पिता एवं अग्रज उनसे मिलने आये थे। उस वर्ष राजस्थानमें भीषण अकाल पड़ा था और गीताप्रेसकी ओरसे अनेक नगरों एवं स्थानोंमें सहायता-कार्य चल रहा था। श्रीपोद्दार महाराज स्थान-स्थानपर घूम-घूमकर गोसेवाके कार्यकी सँभाल कर रहे थे। इस निमित्त ही वे राजगढ आये थे। इस यात्रामें पू.श्रीराधाबाबा भी श्रीपोद्दार महाराजके साथ थे। इस अवसरपर श्रीकृष्णचन्द्रजीके पिता एवं भाईको राजगढ़में श्रीराधाबाबाके भी दर्शनोंका सौभाग्य मिला। दोनों पिता-पुत्र पू. श्रीराधाबाबाके दर्शनोंसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने घर आकर श्रीकृष्णचन्द्रके सामने श्रीराधाबाबाके गौरवर्ण, लघु वयसमें भी अति उत्कट वैराग्य, संन्यासी वेष, आकर्षक व्यक्तित्व, सौम्य स्वभाव, प्रसन्न मुद्रा और अति सुमधुर कण्ठसे 'राधा-राधा' उच्चारण आदि सभी बातोंका उन्मुक्त कण्ठसे बखान किया। भाई कृष्णचन्द्रजीके मनमें यह सब सुनकर अत्यधिक विषाद यह हुआ कि ऐसे तेजस्वी और सच्चे संन्यासी महात्माके दर्शनोंसे वे वंचित रह गये।

जब किसीके भी मनमें सच्ची चाह जगती है तो आगे-पीछे उसकी पूर्त्ति होती ही है। श्रीकृष्णचन्द्रजीके पिताका शिक्षाविभाग चूरूमें सन् १९४२में स्थानान्तरण हो गया और श्रीपोद्दार महाराजको भी सन् १९४२में ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रमके वार्षिकोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये चूरू जाना पड़ा। श्रीकृष्णचन्द्रजीके पिताजीको जैसे ही इन दोनों महापुरुषोंके चूरू आगमनकी सूचना मिली , उन्होने राजगढ़ पत्र भेजकर श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवालको चूरू बुलवा लिया।

श्रीकृष्णचन्द्रजी जिस समय चूरू-ब्रह्मचर्याश्रममें पहुँचे, तबतक अपराह्न हो चुका था। ऋषिकुलके प्रांगणमें वार्षिकोत्सवके कार्यक्रम चल रहे थे। भाई श्रीकृष्णजी दर्शनार्थियोंके मध्य बैठ गये। मंचपर श्रीपोद्दार महाराज और पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके दर्शनसे वे अत्यधिक विभोर हो रहे थे।

उत्सवका कार्यक्रम लगभग साढे-चार बजे पूर्ण हुआ। पू.गुरुदेव तो हाथमें कमण्डलु लिये उसी समय नगरके बाहर बालूके टीलोंकी ओर शौचसे निवृत्त होनेके लिये चल दिये। पू.गुरुदेवकी सदासे ही यह प्रकृति थी कि जबतक उन्हें सर्वथा निर्जन स्थान नहीं मिलता था वे शौच निवृत्त नहीं हो पाते थे। अतः वे पीछे अनुगमन करने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजीसे अपना पीछा छुड़ाना चाह रहे थे। और इधर श्रीकृष्णचन्द्र उनका पीछा छोड़ ही नहीं रहे थे। दोनों ओर होने वाली इस प्रतिद्वंद्वितासे पू.गुरुदेवको धोरोंमें नगरसे बहुत दूर चला आना पड़ा। बालूमें पू.गुरुदेवको खड़ाऊ पहने रहनेके कारण चलनेमें बहुत ही असुविधा थी। श्रीकृष्णचन्द्र तो जूता पहने थे अतः उन्होंने सुविधासे दौड़कर पू.गुरुदेवको पकड़ ही लिया। वे सीधे काष्ठवत् पू.गुरुदेवके चरणोंमें गिर पड़े और उनके चरण पकड़कर जोरसे रोने लगे। पू. गुरुदेवके लिये यह एक अप्रत्याशित घटना थी। वे मौन थे अतः कुछ बोल तो पाते नहीं थे, मात्र 'राधा-राधा', 'राधा-राधा' कहकर श्रीकृष्णचन्द्रजीको अपने चरणोंसे हटनेका आग्रह कर रहे थे, किन्तु श्रीकृष्णजी हटनेका नाम ही नहीं ले रहे थे। वे अतिशय विह्वल हुए रोते ही जा रहे थे। अन्तमें पू.गुरुदेवने अपने हाथों उन्हें पकड़कर उठाया और उन्हें स्पर्श करते हुए कहा–'राधा-राधा', 'राधा-राधा' ।

श्रीकृष्णजीको यही तो अभीष्ट था। पू.गुरुदेवका स्पर्श पाते ही श्रीकृष्णजीने उन्हें छोड़ दिया और स्वयं भी उठ बैठे। पू.ग,रुदेव शौच जानेके लिये आगे बढ गये और श्रीकृष्णजी वहीं बैठ गये। उनका अंग-अंग काँप रहा

था। सम्पूर्ण शरीर ही स्वेदसे लथपथ हो रहा था। वे प्रेमकी अधिकतासे काँप रहे थे। उनके मनमें कृतकृत्यता इसी बातकी थी कि आज परम विरक्त श्रेष्ठ सन्त पू.गुरुदेवसे उन्हें गुरुदीक्षा-मंत्र 'राधा-राधा' प्राप्त हो गया है।

श्रीकृष्णचन्द्रजी मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे कि आज मेरी दीक्षा हो गयी। संत कबीरदासजीकी दीक्षा भी तो इसी विधिसे हुई थी। कबीरदासजी ब्राह्म मुहूर्त्तके अन्धकारमें गंगाजीके घाटकी सीढ़ियोंपर चुपचाप लेट गये थे। वैष्णवाचार्य स्वामी श्रीरामानन्दजी महाराज अँधेरेमें ही गंगास्नान करनेके लिये आये। घाटकी सीढियोंसे उतरते समय उनका एक चरण श्रीकबीरदासजीकी छातीपर पड़ गया। चरण पड़ते ही श्रीरामानन्दजीका चौंकना स्वाभाविक था। चौंकते समय 'राम-राम'उच्च स्वरमें जो श्रीरामानन्दजीके मुखसे नाम-ध्वनि हुई, श्रीकबीरदासजीने उसे गुरुमंत्र मानकर उनके चरण पकड़ लिये।

इस घटनासे भाई श्रीकृष्णजीके मनमें यह बात बैठ गयी कि भव-सागरसे पार उतारने वाले गुरुजी मुझे मिल गये एवं मुझे अब सदा-सर्वदा राधा-नामका ही जप-संकीर्त्तन करना है।

सन् १९४५ई.में बी.ए. की परीक्षा देनेके पश्चात् भाई श्रीकृष्णजी पू. पोद्दार महाराजके पास ही रहनेको गोरखपुर आगये। यहाँ वे पू.गुरुदेवकी सेवामें ही संलग्न रहने लगे। पू.गुरुदेवको भिक्षा करवाना, उनकी कुटियाकी सफाई कर उसे स्वच्छ रखना, और उनके ही आदेशानुसार साधन-भजन करना, यही उनका उस समयका दैनिक कार्यक्रम रहा करता था।

इन्हीं दिनों उन्हें पू.गुरुदेवके अधिक निकट आनेका अवसर मिला और पू.गुरुदेव इन्हें श्रीपोद्दार महाराजके आन्तरिक आध्यात्मिक स्वरूपकी बातें बताया करते थे। वैसे श्रीकृष्णचन्द्रजी जब बीकानेरमें पढते थे, तब भी श्रीगंभीरचन्दजी दुजारीसे उन्हें श्रीपोद्दार महाराजको भगवान्के साक्षात् दर्शनकी बातें सुननेको मिलती थीं। श्रीकृष्णचन्द्रजीके मनमें श्रीपोद्दार महाराज और पू. गुरुदेवके प्रति श्रद्धा पनपनेकी यह संक्षिप्त भूमिका ही यहाँ पाठकोंकी जानकारीके लिये दी गयी है।

श्रीपोद्दार महाराजके द्वारा गीतावाटिकामें वर्ष भर प्रायः सभी उत्सव मनाये जाते थे। नवरात्रके समय ब्राह्मणोंके द्वारा शतचण्डीका आयोजन होता था। इसी प्रकार जन्माष्टमी, राधाष्टमी, रामनवमी, नृसिंहजयन्ती, महाशिवरात्रि, रासपूर्णिमा, वामनद्वादशी आदि वर्ष भरके सभी उत्सव गृहस्थोचित मर्यादासे

श्रीपोद्दार महाराजके घरमें सम्पन्न होते थे। इन उत्सवोंमें सम्पादकीय विभागके लोग तो सम्मिलित होते ही थे, गीताप्रेससे भी लोग आते थे; साहबगंज मोहल्लेके मारवाड़ी भावुक सज्जन भी सम्मिलित हुआ करते थे। इन उत्सवोंकी सभी व्यवस्थाका भार पू.गुरुदेवने भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीको ही सौंप रखा था। वे ही इस दायित्वका पूरी तरह निर्वाह करते थे। इसके अतिरिक्त बाहरसे जो भी अतिथि श्रीपोद्दार महाराजसे मिलने गीतावाटिका आया करते थे, उनके आवास, जलपान, भोजनादिकी व्यवस्था भी श्रीकृष्णचन्द्र ही सम्हालते थे।

सच्ची सेवा सेव्यके हृदयको आकृष्ट कर ही लेती है। स्वार्थभावसे सर्वथा शून्य होकर की जानेवाली सेवा सचमुच ही एक चमत्कार उपस्थित कर देती है। अतः पू.गुरुदेवने श्रीकृष्णचन्द्रजीको अपना प्रतिनिधित्व देनेका निश्चय कर ही लिया। यह ध्यान रखते हुए कि अवश्य ही वह व्यक्ति सही-सही रीतिसे प्रतिनिधि हो, पू.गुरुदेवने उन्हें सफेद वस्त्रोंमें ही संन्यासीवत् रखनेकी योजना बना ली। श्री चिम्मनलालजी गोस्वामीकी साक्षीमें मंत्र देकर पू.गुरुदेवने श्रीकृष्णचन्द्रजीको श्रीपोद्दार महाराजका धर्मपुत्र निर्णय कर दिया। अवश्य ही वह मंत्र संन्यासमंत्र नहीं था। धर्मपुत्र बनाकर श्रीकृष्णचन्द्रजीको पू.गुरुदेवने सावधान किया कि आजके पश्चात् तुम्हें अपने जन्मदान देनेवाले माता-पिताकी अपेक्षा इन धर्मके माता-पिताको अधिक महत्त्व देना चाहिये, एवं सदा मन-ही-मन यही आवृत्ति करनी चाहिये कि वस्तुतः तुम इनके ही पुत्र थे, परन्तु मायाशक्तिने तुम्हारा गर्भस्थापन तुम्हारी माताकी कोखमें भूलसे कर दिया था।

अपने प्रतिनिधिके रूपमें जब पू.गुरुदेवने श्रीकृष्णचन्द्रजीको श्रीपोद्दार महाराज एवं उनकी धर्मपत्नीकी सेवामें नियुक्त कर दिया एवं जन्म देनेवाले माता-पितासे उनका मानसिक रूपसे सम्बन्ध-विच्छेद भी कर दिया, तो श्रीकृष्णचन्द्रजीके जन्मदाता माता-पिताकी सद्गतिका उत्तरदायित्व उन्होंने अपने कन्धोंपर उठा लिया। उन्होंने उसी दिवस श्रीकृष्णचन्द्रजीको आश्वासन दे दिया कि तुम्हारे माता-पिताकी सद्गतिका समस्त उत्तरदायित्व मेरा है। मेरे स्वयंके माता-पिताकी सुगति होनेके पहले तुम्हारे माता-पिताकी सुगति निश्चय ही होगी।

श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालकी माताजीकी मृत्य पहले हुई, एवं तत्पश्चात् कुछ वर्षमें उनके पिताजीकी भी मृत्यु होगयी। उनकी माँकी मृत्युके समय तो पू.गुरुदेवने उन्हें व्रती बनाया नहीं था, अतः वे उनकी रुग्णताका समाचार

पाकर ही राजगढ़ चले गये थे और उनकी सारी क्रिया करके गोरखपुर लौट आये थे। हाँ ! उनके पिताकी अतिशय रुग्णावस्थाके समय श्रीपोद्दार महाराजने उन्हें उनकी सेवाके लिये उनके पास राजगढ़ जानेका बहुत आग्रह किया। क्योंकि उस समय श्रीपोद्दार महाराज स्वयं भी रुग्ण थे और पू.गुरुदेवकी इच्छा थी कि वे अपने धर्मपिता श्रीपोद्दार महाराजकी रुग्णताको अधिक महत्व देते हुए अपने जन्मदाता पिताकी सेवाको गौणता दें, अतः श्रीकृष्णचन्द्रजीने श्रीपोद्दार महाराजकी राजगढ जानेकी आज्ञाको न मानकर, गोरखपुर ही रहकर पोद्दार महाराजकी सेवाका व्रत निभाया। कुछ दिनों पश्चात् श्रीकृष्णजीके पिताका देहान्त हो गया। उनके पिताके देहान्तका समाचार जैसे ही श्रीपोद्दार महाराजको मिला वे इतने व्यथित हुए कि श्रीकृष्णचन्द्रजीको सम्बोधित करके उनके मुखसे निकल पड़ा—'जा, तुझे इस जन्ममें मनोवाञ्छित सिद्धि नहीं मिलेगी।''

यह बात जब पू.गुरुदेवके कानोंमें पहुँची तो उन्होंने श्रीकृष्णचन्द्रजीको अपने पास बुलाकर यही कहा—''भैया कृष्ण ! तुम भी जन्म लेनेको तैयार हो जाओ एवं मैं भी एक जन्म तुम्हारे साथ ही ले लेता हूँ । तुमको तुम्हारे धर्म-पिता श्रीपोद्दार महाराजका श्राप मिला है, तुम इसे सहर्ष स्वीकार करलो । मैं भी अपने जन्मदाता पिताका श्राप स्वीकार कर लेता हूँ। मुझे भी संन्यास लेते समय मेरे पिताने यही श्राप दिया था कि 'जा, तुझे इस जन्ममें ध्येय-प्राप्तिरूप सिद्धि नहीं मिलेगी।' यद्यपि मेरे आराध्य श्रीकृष्णने मुझे ऐसी शक्ति दी है कि मैं मेरे पिता द्वारा दिया श्राप व्यर्थ कर सकता हूँ, परन्तु तुझे जो श्रीपोद्दार महाराजरूप महासिद्ध सन्तका अमोघ श्राप है, वह तो तुम्हें भोगना ही होगा। तुम्हारे जन्म लेनेके किसी विधानको मैं तभी स्वीकार करूँगा, जब मेरा भी जन्म हो। अतः चलो, हम दोनों ही पुनः जन्म लेनेका विधान स्वीकार कर लेते हैं।''

'पू.गुरुदेव श्रीकृष्णचन्द्रजीके साथ जन्म लेनेवाले हैं'— यह बात हवाकी तरह जब गीतावाटिकामें फैली तो पू.गुरुदेवके साथ ही गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी तथा अनेक उच्चकोटिके साधकोंने भी अपनी यही इच्छा पू.गुरुदेवके सम्मुख प्रकट कर दी कि हम सभीको भी आपके साथ ही जन्म लेनेका विधान आप दया करके भगवान्से स्वीकृत करा दीजिये।

ये सब बातें श्रीपोद्दार महाराजके पास भी पहुँच ही गयीं कि उनके

श्रापको पू.गुरुदेवने अपने ऊपर स्वीकार कर लिया है। श्रीपोद्दार महाराज यह सुनकर भी कुछ दिवस तो वैसे ही गंभीर बने रहे। एकदिन स्वयं अ.सौ. माताजी (श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी)ने उन्हें कह दिया "राधाबाबाके साथ मैं भी एक जन्म और लेने जा रही हूँ; लोगोंको आप भगवान्के दर्शन तो करानेसे रहे, अपने सेवकोंको श्राप देते रहिये।" इसके बाद एक दिन पू. पोद्दार महाराज हँसते-हँसते पू.गुरुदेवकी कुटियामें आये तथा आकर बोले " बाबा ! श्रीकृष्णचन्द्रका पुनर्जन्म तो नहीं होगा "

यह सुनते ही पू.गुरुदेवने श्रीकृष्णचन्द्रको बुलवाया और श्रीपोद्दार महाराजके चरणोंमें प्रणत करवाया। इस भाँति यह श्रापलीला श्रीकृष्णचन्द्रके लिये इस वरदानके रूपमें परिणत होगयी कि अब उसका पुनर्जन्म नहीं होगा।

१९५६ ई.की शरद पूर्णिमाके दिन मध्य रात्रिके समय गोरखपुरमें पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने काष्ठमौन ले लिया था एवं कुछ सप्ताह पश्चात् वे श्री पोद्दार महाराजके साथ रतनगढ़ चले आये थे। सन् १९५७की मकरसंक्रान्तिके दिन पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी जन्मदात्री माताजीका देहावसान हो गया। यह समाचार पू.गुरुदेवके पूर्वाश्रमके परिवारवालोंने तार द्वारा पू.पोद्दार महाराजके पास भिजवाया था। यह तार तो अतिशय विलम्बसे पू.पोद्दार महाराजके पास पहुँचा। इधर पू.गुरुदेवकी माताजी मृत्युके दूसरे दिन ही, रातके नौ-दस बजेके आसपास अतिशय चिन्मय दिव्य रमणीके वेषमे पू.गुरुदेवके सम्मुख प्रकट होगयीं। कुछ कालतक तो पू.गुरुदेव अपनी माताको पहचान ही नहीं सके और आश्चर्य करते रहे कि यह दिव्य युवती स्त्री मेरे एकान्त कक्षमें कैसे प्रवेश पा गयी। किन्तु पश्चात् जब माताजीने अपना परिचय दिया तो तत्क्षण ही पू. गुरुदेवको ज्ञान हो गया कि माँ तो अपने स्थूल देहका परित्याग करके यहाँ मेरे सम्मुख सूक्ष्मदेहसे खड़ी है।

जब पू.गुरुदेवकी जन्मदात्री माता अपने सूक्ष्मदेहसे पू.गुरुदेवके सम्मुख उपस्थित हो गयी तो अब पू.गुरुदेवको उनकी उत्तम गतिको निर्धारित करना विचारणीय हो गया । पू.गुरुदेव विचार करने लगे कि मेरी माताकी भावी स्पृहणीय परिणति क्या हो ? उसी समय पू..गुरुदेवको अपने द्वारा प्रदत्त आश्वासनकी भी स्मृति हो आयी और उनमें यह जिज्ञासा भी उदित हुई कि भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीके माता-पिता ब्रजराज्यमें पहुँच गये कि नहीं। भाई

श्रीकृष्णचन्द्रजीकी माताजी एवं पिताजीका देहान्त तो अनेक वर्षों पूर्व ही हो चुका था। आज जब पू.गुरुदेवने अपने आराध्य श्रीकृष्णसे उनकी वर्तमान स्थितिके सम्बन्धमें जिज्ञासा की तो पू.गुरुदेवको बतलाया गया कि अभी वे अपने गन्तव्य ब्रजराज्यमें नहीं पहुँचे हैं। पू. गुरुदेवको यह स्वीकार ही नहीं था कि उनकी जन्मदात्री माता तो पहले भगवान्‌के धाम चली जाय और श्रीकृष्णके माता-पिता भगवान् श्रीकृष्णके नित्य पार्षद पदमें पहुँचें ही नहीं । पू. गुरुदेवने उसी समय अपने माता-पिताकी होनेवाली परिणितियोंको तबतकके लिये स्थगित कर दिया, जबतक उनके परमाराध्य श्रीकृष्ण भाई श्रीकृष्णचन्द्रके माता-पिताकी पूर्ण सद्गति नहीं कर दें। जब भाई श्रीकृष्णचन्द्रके माता-पिता ब्रजराज्यमें पहुँच गये, तभी पू.गुरुदेवके माता-पिता अपनी विशिष्ट परिणितियोंको प्राप्त हो सके।

जैसा कि पू. गुरुदेवने बतलाया था कि उनकी माताजीकी प्रथम परिणति भगवती पार्वतीके रूपमें हुई, जबकि उनके पू. पिता भगवान् शंकरके कैलासमें उत्तम गतिमें निहित रहे। दूसरी परिणतिमें पू.गुरुदेवके पिता महर्षि भागुरिके रूपमें हुए और उनकी माता उनकी पत्नी के रूपमें हुईं। इसके पश्चात् उनकी माताजीकी तृतीय परिणति माता कीर्तिदाके रूपमें हुई और अन्तिम एवं चतुर्थ परिणति बृषभानुनन्दिनी श्रीराधाकिशोरीके शीशपर विराजित एक सौदामिनी आभूषणके रूपमें हुई।

उक्त प्रसंगसे प्रकट होता है कि पू.गुरुदेव अपने आश्रितोंके लोक-परलोक और अन्तिम शाश्वत गतिके सम्बन्धमें कितने सावधान, सचिन्त्य और सक्रिय रहते थे। पू.गुरुदेवके परमोदार व्यक्तित्वमें अचिन्त्य सुहृद-भावनाके साथ ही उनकी अपरिमित शक्ति-सामर्थ्यका आकलन हम सभीके अनुमान एवं कल्पनासे सर्वथा परेकी वस्तु है। हम सभीके प्रति पू.गुरुदेवके अपरिसीम वात्सल्यका पावन स्मरण करते हुए मैं इस प्रसंगको विराम देता हूँ।

रासलीलाओंमें अनुभूतियाँ

गोचारणलीलाका उन्मेष और भगवदादेश

(पाँचवाँ अध्याय)

प्रतिदिन ही जब भुवनभास्कर प्राचीको रञ्जित करने लगते, पू.गुरुदेव ध्यानमें बैठ जाते थे। पू.गुरुदेव कहा करते थे कि आजके सोलह सौ वर्ष पूर्व ही उन्होंने अपने चित्तको संकल्पशून्य कर लिया था। उसी समय उन्हें ज्ञानका आलोक प्राप्त हो गया था। और आज तो महज्जन श्रीपोद्दार महाराज (भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)की कृपासे उनकी विलक्षण दशा है। उनके सम्मुख विलक्षण ध्यान-दृश्य है:—

नीलसुन्दर – उनके प्राणाराध्य वंशीके छिद्रोंमें स्वर भरते हुए गोचारणके लिये वनमें पधार रहे हैं। वे अपने भाव-शरीरसे दुर्मद गोपकी वधू मञ्जुश्यामा बने अपनी बड़ी बहिन श्रीराधारानी (रायण गोपवधू)के सहित निर्निमेष दृष्टिसे अपने वृन्दावन-स्थित भवनकी अटारीसे उन्हें निहार रहे हैं । ब्रजराजतनयकी इस समयकी शोभा कैसी निराली है ! घुँघराली अलकें कपोलोंपर, ललाटके कुछ अंशपर झूल रही हैं । गोखुरोंके बिखरे हुए धूलिकण उड़-उड़कर उनकी अलकोंपर गिर रहे हैं। कुन्तलमण्डित मस्तकपर मयूरपिच्छका मुकुट सुशोभित है और केशोंमें वन्य-प्रसून ग्रथित हैं। नेत्रोंकी मनोहर चितवन और अधरोंपर व्यक्त हुए मृदुस्मितकी शोभा देखते ही बन रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो खञ्जन-मिथुन अपनी नैसर्गिक भावनामें तन्मय हुआ नृत्यपरायण हो, और सद्यः प्रस्फुटित नीलसरोरुहसे सुधा-विनिन्दित मधुधारा क्षरित हो रही हो। वेणुके छिद्रोंमें वे स्वर भरते हैं और उनके असंख्य गोपशिशु अपने-अपने मधुमय कण्ठसे उनके ललित लीला-विहारका गान करते उनके आर्श्व-पार्श्व, आगे-पीछे चल रहे हैं।"

अहा ! इस अप्रतिम सौन्दर्यको निहारते पू.गुरुदेवकी कैसी दशा हो रही है ! उनकी उस स्वसंवेद्य अवस्थाका कोई भी जीवनी-लेखक कैसे चित्रण कर पाये ! इस ध्यानके समय इन्हें कैसा ब्रह्मानन्द-तिरस्कारी आह्लाद हो रहा है, उनके हृदयमें कैसे-कैसे प्रीतिके अनुभाव व्यक्त होरहे हैं, इसे वाग्वादिनी

तो कह ही नहीं सकती, मेरे-जैसा अल्पज्ञ लेखक क्या कहे ?

हाँ, अपनी कल्पनाके पंखोंपर उड़ता हुआ इतना मात्र लिखनेका दुस्साहसभर कर रहा हूँ – अपनी असंख्य गोपवधूसखियों और अपनी बड़ी बहन रानीके सहित वे लोक-लज्जाके सभी दुर्लंघ्य कपाट उन्मुक्त कर दौड़कर अपने गृहसे बाहर आगयी हैं । वहाँ उनके प्राणवल्लभ प्रियतमके मुखारविन्दसे राशि-राशि मधुकी धारा प्रवाहित हो रही है और नेत्र-भ्रमर उसी मकरन्दरसमें डूब रहे हैं, पग गये हैं । इन नेत्र-भ्रमरोंसे पू.गुरुदेवके भावशरीर मञ्जुश्यामा-रूपा गोपीके हृदय एवं प्राण तो सन्नद्ध थे ही । अतः यह प्रीतिरसरूपा मधुधारा इसी तन्तुके सहारे झर रही थी,उनके विरहतप्त हृदयमें, प्राणोंमें भी विरहाग्नि जो अन्तस्तलके प्रत्येक अंशमें अलक्षित रूपसे पलकान्तर-वियोगसे भी धक्-धक् जलने लगती है, प्रशमित हो गयी थी ।

देखो, देखो ! मधुकर मानो अत्यधिक मधुपानसे मत्त होकर तन्द्रित हो उठा हो, इस प्रकार उनके भावशरीरके नेत्र मुँदने लगे। अहा ! रसपूरित हृदयमें प्रीतिकी तत्क्षण ही एक उत्तुंग लहर उठी, परन्तु लज्जाने प्रायः सम्पूर्ण द्वार रुद्ध कर दिये थे । लज्जा मानो प्रीति-रंगमंचकी पूरी सूत्रधार ही बन बैठी थी। इसीलिये उनके मुखारविन्दपर बस लाजभरी पवित्र हँसी ही व्यक्त हो सकी। विनम्र भावमुद्रामें नेत्रोंको अतिशय स्निग्ध करते हुए वे बंकिम चितवनसे ही उनकी ओर मात्र देख सके। किन्तु करुणावरुणालय, गुणनिधान, परम रसमय ब्रजेन्द्रनन्दनने इसे ही बहुत-बहुत माना; इस सत्कारके उपहारको समग्र उल्लाससे स्वीकार करते हुए वे ब्रजके देवता, भावग्राही रसिक, रस-निधान प्रियतम वनमें प्रवेश करनेके पूर्व किञ्चित् काल उनके सम्मुख स्थित हो गये । देखो ! वे अपनी प्राणप्रिया मञ्जुश्यामासे कुछ निवेदन कर रहे हैं। अपने प्रियतमकी मेघगंभीर मधुरातिमधुर स्वरलहरी पू. गुरुदेवके मानसमें गूँज उठी – " प्राणेश्वरी ! मैं लगभग दो वर्ष पश्चात् तुम्हारे प्राकृत शरीरके पास ब्रजवासी रासमण्डलीके ठाकुरके रूपमें उन्मिषित होकर आऊँगा, मेरा यह सन्देश विस्मृत मत करना ! "यह सन्देश सुनते ही पू. गुरुदेव अपने ध्यानसे विचलित हुए बाह्याविष्ट हो उठे। उन्होंने ध्यान-निमीलित नेत्र खोल दिये। वे विचारमें पड गये –

"लीलामयकी इच्छा ! वे कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम्-समर्थ हैं। उनके स्वरूपतत्वको, श्रीविग्रह-रहस्यको कौन समझ सकता है ? वे सर्वभवनसमर्थ

हैं। अनेक आचार्योंके सम्मुख वे मूर्त्तियोंके रूपमें प्रत्यक्ष थे। आज भी श्रीनाथजी, वृन्दावनके बिहारीजी, मदनमोहनजी आदि चिन्मय विग्रह' त्रिजगन्मंगलकारी वर्षा कर ही रहे हैं। मेरे सम्मुख भी पोद्दार महाराजके रूपमें पांचभौतिक शरीरसे ही उन्होंने कितनी कृपा-वर्षा की है।''– उल्लासमें भरे पू.गुरुदेव भगवान्‌की महिमाके विचारोंमें डूबगये –'' मेरी बुद्धि मात्र एक इन्द्रिय भर ही तो है। बुद्धिकी कहाँ सामर्थ्य है कि वह अधोक्षज प्रभुको जान सके । मेरी प्रत्येक स्फुरणाके नियंत्रक जब मेरे प्रभु हैं, तब तत्वका, सत्य-असत्यका निर्णय बुद्धिके द्वारा कैसे संभव है ? वे सर्वभवनसमर्थ जो-जो रूप रचा कर जैसी लीला करें, उनकी मात्र बलिहारी है'।''– विचार करते-करते पू.गुरुदेवको पता ही नहीं चला कि कब प्रभातसे मध्याह्न हो गया है। अपने प्रथम प्रहरके पूजाकालमें अतिरेक होता देख वे अपने आसनसे उठ खड़े हुए। पुनः शौच-स्नानसे निवृत्त हो वे अपने पूजा-अर्चनमें लग गये । ध्यानकालमें हुआ प्रभुका आदेश उनकी अन्तश्चेतनाके गर्भमें समा गया ।

भगवदादेशका अभिव्यक्तीकरण

'' यह जो कुछ इस समय वर्तमान है, यह सब-का-सब परम पुरुष परमात्मा श्रीकृष्ण ही हैं, भूत और भविष्यकाल भी श्रीकृष्ण ही हैं। ये श्रीकृष्ण ही अन्नसे उत्पन्न होनेवाले जीव हैं, और इन सब जीवोंके शासक भी वे ही हैं। ''पू.गुरुदेव प्रातः शौचक्रियाको जानेसे पहले उषःपानके रूपमें जल पीते-पीते मुझे उद्‌बोधन कर रहे थे। मैं उन दिनों योग-वाशिष्ठ पढकर उनके सम्मुख कभी-कभी तर्क कर बैठता था। वे मुझे यही समझा रहे थे कि ''भगवान्‌का असमोर्ध्व ऐश्वर्य तर्कातीत है। प्राकृत पदार्थ ही तर्कगोचर होते हैं, हो सकते हैं, परन्तु भगवान् नन्दनन्दन तो प्रकृतिसे परेकी वस्तु हैं। वे स्वप्रकाश परमानन्दस्वरूप हैं । उन्हें इन्द्रियाँ भला प्रकाशित ही कैसे कर सकती हैं ! कृपा-परवश हुए वे अपनी स्वप्रकाशिका शक्तिसे भले ही किसीकी मन-बुद्धि-इन्द्रियोंके गोचर हो जावें, और उन्हें भले ही कोई कृपा-प्राप्त महापुरुष जान ले, समझ ले, उनके अपरिसीम ऐश्वर्य-समन्वित रूपको देख ले। परन्तु फिर वह स्थिर, विकृतिशून्य रह सके, यह संभव ही नहीं है।'' पू. गुरुदेव जल बहुत ही धीरे-धीरे स्वाद ले-लेकर पीते थे। मैं उनके पास खड़ा

निर्निमेष उन्हें देख-सुन रहा था। अचानक मैंने देखा अत्यन्त मन्द-मंथर गतिसे श्रीपोद्दार महाराज निम्न मुख किये उनकी कुटियाकी ओर आ रहे हैं । मैंने तुरन्त ही पू.गुरुदेवको उनके इधर आनेकी सूचना दी। पू.गुरुदेव एक काष्ठकी चौकीपर बैठे थे, अतः मैंने श्रीपोद्दार महाराजको आसन देनेकी दृष्टिसे दूर रखी एक कुर्सी उठायी और पू. गुरुदेवकी चौकीके निकट रख दी ।

पू. पोद्दार महाराज कोई गोपनीय मंत्रणा करें, यह विचारता हुआ मैं वहाँसे उठकर दूर चला गया। श्रीपोद्दार महाराज मेरा मन्तव्य समझकर मुझे अपने पास बुलाकर उसी कुर्सी पर बैठ गये जिसे मैंने उनके लिये रखी थी। वे पू. गुरुदेवको सूचना भर देने आये थे। वे कह रहे थे कि " श्रीमोहनलालजी झुनझुनूवालाकी प्रेरणासे कोई रासमण्डली वृन्दावनसे गोरखपुर आयी है। वह अपने कार्यक्रमानुसार तो समस्तीपुर(बिहार) जा रही थी, परन्तु यात्रा बहुत दूरकी देख मध्यमार्ग गोरखपुरमें श्रीठकुरीबाबू जालानके यहाँ ठहरी है। श्रीमोहनलालजीने ही वृन्दावनसे ठकुरीबाबूको पत्र लिखकर उनकी ठहरनेकी व्यवस्था करायी है। उस मण्डलीका रास आज रामदास जालान अपने घर कराने जा रहा है। उसने मुझे, आपको और गोस्वामीजीको बुलानेका बहुत-बहुत आग्रह किया है। श्रीसेठजी रासके बहुत विरोधी हैं, मैंने यह बात उसे बतला भी दी, परन्तु फिर भी वह बालहठी है, उसके हठके कारण सायंकाल उसके वहाँ जाना ही पड़ेगा। आप अपनी साधनाका कार्यक्रम तदनुरूप कर लीजियेगा, यही सूचना देने मैं चला आया था।"

पू.राधाबाबा शौचक्रियाको जानेवाले हैं, यह सोचकर पू. पोद्दार महाराज तुरन्त ही वापस चले गये।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि श्रीवृन्दावनवासी मोहनलालजी झुनझुनवाला श्रीराधाबाबाके ऐसे ब्रजभाव-भावी अनुयायी रहे हैं, जो जबसे पू. राधाबाबाका श्रीपोद्दार महाराजके पास आगमन हुआँ, तभीसे उन्हें ब्रजभावकी रस-साधनामें सहयोग देते रहे हैं । श्रीराधाबाबाको जब-जब पुरातन रसिकाचार्योंकी ब्रजरस-सम्बन्धी वाणियाँ देखनेकी जिज्ञासा हुई है, तभी-तभी उनके द्वारा स्वतः ही अपने-आप बिना कोई सूचना पाने पर भी वे वाणियाँ भेजी जाती रही हैं । बिना मँगाये ही अपने मनोवाञ्छित ग्रन्थ उनके द्वारा यथासमय भेजे जानेसे पू. गुरुदेव अनेकों बार चमत्कृत होते रहे हैं । इस बार भी उनके द्वारा भेजी गयी

रासलीलामंडलीके गोरखपुर-आगमनका समाचार पू. पोद्दार महाराज द्वारा पाकर पू. गुरुदेव किंचित् विचारमें पड़ गये । मैं उन्हें विचारोंमें निमग्न देख, उनके पाससे उठ आया और वे विचारोंमें खोये-खोये ही शौचालयके पथकी ओर बढ़ गये।

यह धटना सन् १९४९ ई० तदनुसार वि.सं २००६के ग्रीष्मकालकी है। श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका प्रारम्भसे ही रासादि-अभिनयके घोर विरोधी रहे हैं । उन्हें अपनी युवावस्थामें किसी नाट्यमण्डली द्वारा अभिनीत रासलीला-दर्शनसे काम-विकारका आभास हो गया था, अतः तबसे ही वे अपने अनुयायीवर्ग एवं मित्रमण्डलीको ऐसे अभिनय देखनेसे वर्जित करते रहे हैं । उनका रासविरोध अति कट्टर है, इस मान्यताके कारण ही गोरखपुरमें यह पहली रासमण्डली ही साहबगंज मोहल्लेमें इस बार आयी है । इसके पूर्व वल्लभसम्प्रदायके वैष्णवों द्वारा ही रासमण्डलियोंको गोरखपुरके उर्दू बाजार अथवा अलीनगरमें आमंत्रित किया जाता रहा है ।

श्रीसेठजीकी ऐसी मान्यता भी थी कि रासमण्डलीके स्वामी लोग चरित्रगत दोषोंसे युक्त होते हैं और उनका उद्देश्य इन अभिनयों द्वारा भावुकता उत्पन्नकर मात्र अर्थोपार्जन करना ही होता है । वे स्वरूपधारी बालकोंका भी पूरा शोषण करते हैं और उनके चरित्रनिर्माण अथवा शिक्षाकी किञ्चित् भी परवाह नहीं करते । श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाकी भावना वस्तुतः युक्तिसंगत और तथ्यपरक थी । एक-दोको अपवाद करके इन रासमण्डलियोंके स्वामी प्रायः इन दोषोंसे युक्त थे ।

क्योंकि श्रीसेठजीकी दृष्टि व्यापक लोक-संग्रहकी परिचायक और लोकमंगलसे ओतप्रोत थी, उनमें जगत्को सत्य मार्गदर्शन करनेकी प्रवृत्ति काम कर रही थी, अतः श्रीपोद्दार महाराज और पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा दोनों ही उनका पूर्ण समादर करते थे। उनका भी अक्षरशः वही मत था, जो श्रीसेठजीका था। परन्तु जहाँ वे **वासुदेवः सर्वमिति**की सर्वोच्च तत्वपरक अनुभूतिमें प्रतिष्ठित होते, वहाँ उनके सम्मुख लोकशिक्षाका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता था । वहाँ तो उन्हें सर्वत्र जड़चेतनमें समरूपसे उनके प्राणाराध्य जीवनसर्वस्व श्रीयुगल निकुञ्जदम्पती ही विराजित प्रत्यक्ष होते थे। जगत् कहीं दीखे, तब न जगत्को शिक्षा देनेकी बात विचारी जाय। जब वे **''यहाँ जगत आवन नहिं पावत निरतत नन्दकुमार''**की सर्वोच्च स्थितिमें प्रतिष्ठित होते, वहाँ उनका

आचरण श्रीकृष्ण-रसास्वादनपरक ही हो जाता था। संयोगवश इन दिनों श्रीसेठजी और उनके प्रमुख अनुयायीगण श्रीघनश्यामदासजी जालान, श्रीमोतीलाल जालान आदि सभी स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश)के सत्संगमें निरत थे । श्रीघनश्यामदासजीका एकमात्र पुत्र रामदास भगवत्प्रेरणावश रास-दर्शन और उसके संयोजनके पक्षमें हो गया था । प्रथम रासदर्शनसे ही उसे न जाने क्या आकर्षण हो गया था, जिससे प्रेरित हुआ वह अपने निजके घरमें अपने पिता, ताऊ सभीका विरोध समझता हुआ भी रासलीला-संयोजन कर रहा था; और अपने पक्षमें अपने ताऊ, श्रीपोद्दार महाराजको करके, संभवतः वह अपने पिताके सम्मुख अपना पक्ष निर्दोष करनेकी चेष्टामें संलग्न था।

पू. पोद्दार महाराज पू.गुरुदेवको रासमण्डलीमें ले जानेकी बात प्रभातमें ही कह तो आये, परन्तु फिर वे न जाने किस कारणसे प्रथम दिन उन्हें नहीं ले गये। उस दिन वे अकेले ही श्रीगोस्वामीजीके साथ श्रीरामदासजीके घर गये। उनके परिवारसे अ.सौ.माताजी और अ.सौ. सावित्रीबाई आदि अवश्य उनके साथ थीं । मैं भी साथ ही था।

रासमण्डली नयी-नयी बनायी गयी थी । रासके स्वामी श्रीरामजी अतिशय गरीब परिवारसे थे। वे स्वयं पहले रासके ठाकुर बनते थे, और उन्होंने वल्लभसम्प्रदायके कीर्त्तनिया श्रीहरिवल्लभजीके सहयोगसे मण्डली गठित की थी। श्रीहरिवल्लभजी एक उत्कृष्ट सारंगीवादक भी थे और रासलीलाके सभी पदोंके गायनका उनका कुशल अभ्यास था ।

मण्डलीके पास साज-सज्जा और श्रृंगारादिका सामान सर्वथा नगण्यके समान ही था। वृन्दावनसे जो थोड़ी-बहुत साज-सज्जा लेकर ये लोग चले थे, वह भी रास्तेमें एक गठरी चोरी हो जानेसे, खो गया था। पहननेवाली साधारण धोतीको ही पीले रंगमें रँगकर उसमें साधारण-सा नकली गोटा लगाकर ठाकुरके परिधानका निर्माण किया गया था। रासेश्वरी और रासेश्वरके मुकुट तो इतने साधारण थे कि उन्हें देखकर हँसी छूटती थी । श्रीरामदासजीकी हथकरघेकी दुकानकी साधारण-सी-साधारण चादरोंको बिछाकर मंच-सज्जा की गयी थी और परदे एवं पिछवाइयाँ भी अति साधारण ही थीं। उस साधारण साज-सज्जासे समायुक्त मंचपरसे जैसे ही परदा हटा रासेश्वर ठाकुरके सुन्दर स्वरूप और उसकी मन्द मुसकानने सभी दर्शकोंका चित्त आकर्षित कर लिया। मैंने देखा – "श्रीपोद्दार महाराज एकटक निर्निमेष दृष्टिसे स्वरूपको निहार रहे

हैं और मुग्ध हैं।" रासनृत्य प्रारम्भ हुआ और पोद्दार महाराज उस अपूर्व लीलाझाँकीका दर्शन करते-करते अपनी सुध-बुध खो बैठे । वैसे अभूतपूर्व कुछ भी नहीं था। एक साधारण ब्रजवासी बालक कोई बहुत कुशल नृत्यकार भी नहीं था। परन्तु श्रीपोद्दार महाराजके नेत्रोंमें उस नृत्य करते साधारण ब्रजबासी बालकने, न जाने कैसे, भगवान्‌के अपरिसीम सौन्दर्य-माधुर्यशाली रूपको व्यक्त कर दिया। वे उस अभिव्यक्त चिन्मय सौन्दर्यमें ऐसे मोहित हुए कि अपनी प्रज्ञा खोकर उस चिन्मय दिव्यातिदिव्य झाँकीमें डूब गये। सहसा रासेश्वर बने ब्रजवासी बालकने लावनी रागमें गाना प्रारंभ कर दिया था।

धर-धरके अवतार भूमिको भार हरैया मैं ही तो हूँ ।
नँदकौ लाला, मात जसुदाकौ कन्हैया मैं ही तो हूँ।।
मथुरामें लियौ जनम, बिरजमंडलकौ बसैया मैं ही तो हूँ।।

श्रीपोद्दार महाराज तो दूसरे ही किसी लोकमें थे। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी झड़ी लग गयी थी, उनका कुर्त्ता आँसुओंसे सिक्त हो उठा था। श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजी उनके पार्श्वमें ही बैठे थे। वे भी अपने प्राणोपम धर्मभ्राताको अनन्त अपरिसीम चिन्मय सुख-समुद्रमें डूबते-उछलते देखकर उनके सुखसे सुखी हुए स्वयं भी आनन्दोर्मियोंमें लहराने लगे।

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी दूसरे दिवस प्रातः ही पू. गुरुदेव श्रीराधा-बाबाको पिछली रातकी अपनी अनुभूति सुनाते कह रहे थे – "बाबा ! कल रात्रि भाईजीकी रासदर्शन करते-करते विलक्षण दशा हो गयी थी। किंचित् बाह्य जागृति होते ही वे वे देखते कि उनका कुर्त्ता अश्रुओंसे आर्द्र है, अश्रु पौंछकर अपनेको संवरित करनेकी चेष्टा करते, परन्तु कुछ ही क्षणोंमें उनको पुनः होश नहीं रहता था। बाबा ! ब्रजवासी ठाकुरबना बालक भी स्वयं स्नेहार्द्र एवं चकित था। पहले तो वह हम दोनोंको गोरखपुरके कोई प्रतिष्ठित सेठ मान रहा था, क्योंकि व्यवस्थापकगण हमें ही विशेष महत्त्व दे रहे थे । परन्तु बादमें भाईजीकी वैसी प्रेमदशा देखकर उस बालकके हृदयमें भी श्रीभाईजीके प्रति विशेष श्रद्धाके भाव जग गये थे ।"

जिस समय श्रीगोस्वामीजी पू.राधाबाबाको यह प्रतिवेदन सुना रहे थे, मैं उस समय उनके पास ही खड़ा व्यजन करता उनके अंगोंसे मच्छर उड़ा रहा था । वे स्नानके लिये कपड़े उतार, एक कौपीनमें ही खड़े थे।

कुछ ही दिनोंके पश्चात् श्रीपोद्दार महाराज एक दिन श्रीराधाबाबाको

भी रासलीला-दर्शनार्थ ले गये। श्रीपोद्दार महाराजके बगलमें ही श्रीराधाबाबाका आसन था।

ज्योंही मंचका पर्दा हटा पू.गुरुदेवने सिंहासनासीन ठाकुरस्वरूपके दर्शन किये। पू. गुरुदेव प्रथम दर्शनमें ही चकित थे। उनके सामनेसे श्रीरामदासजी जालानका मकान, गोरखपुरके जनपदकी भीड़ सभी विलुप्त हो गयी थी। उन्हें यही प्रतीत होरहा था, मानो वहाँका कण-कण नीली-नीली प्रकाशधारासे परिवेष्टित होरहा है। रासमण्डलके स्थानपर उन्हें मनोरम पद्मपर्यंक और निकुञ्जके दर्शन हो रहे थे। स्थान-स्थानपर लटकती मणिमुक्ताओंकी झालरें, रत्नजटित मनोहर आसन-चौकियाँ मानों अति समृद्ध कुञ्जस्थलमें मनोवाञ्छित श्रृंगारकी सब वस्तुएँ यथायोग्य स्थानपर सजाकर रखी हों । पू. गुरुदेवके अपने भावविग्रह प्रियतम नीलमणि अपनी प्राणप्रिया रानीको हृदयसे सटाये निकुञ्जके पद्मपर्यंकमें विराजित थे। श्रीगुरुदेवने मन-ही-मन सोचा –"हो सकता है ये सभी मेरे मनोभाव ही किसी उद्दीपनवश मेरे बाह्य दृश्यवत् मुझे दृष्टिगोचर हो रहे हों, परन्तु सम्मुख ठाकुर और श्रीजीके स्वरूपमें अपने प्राणाराध्य और प्राणसंजीवनी अपनी बड़ी बहन राधारानीकी हू-ब-हू अतिशय प्यारी रत्नजटित सिंहासनासीन छवि देखकर तो वे विस्मित हुए बिना रह ही नहीं सके ।

पू.राधाबाबाने उसी समय मन-ही-मन संकल्प किया –"मुझे जिस चिन्मय स्वरूपका दर्शन हो रहा है, इसे मैं सत्य तभी मानूँगा जब ठाकुर बना ब्रजवासी बालक रासके आरंभमें **"बन्यौ मोरमुकुट नटवरवपु "** – यह पद गावे।

आश्चर्य था, वही हुआ। जैसा पू.गुरुदेवका संकल्प था, वैसा ही ठाकुरने पूर्व-नियंत्रितके समान गायन प्रारंभ किया। अब तो ब्रह्मवित्-शिरोमणि साधु हृदय पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके सभी सन्देह धराशायी होगये। उनकी अन्तरात्मामें एक अभिनव प्रकाश झलमला उठा। उस प्रकाशसे आलोकित पू. गुरुदेवका मन उद्‌भावना करने लगा–

"ओह ! मैं यह क्या देख रहा हूँ, अबतक तो मैंने मात्र श्रीपोद्दार महाराज रूप संतमें ही निविड़ आनन्द-सुधासागरका उद्‌गमस्थल मूर्त्त हुआ अनेक बार देखा था । ऐसा लगता था मानो ईश्वर-प्रतिपादक समस्त उपनिषदोंका प्रामाण्य ही शरीर ग्रहणकर श्रीहनुमानप्रसाद नाम-रूपमें मूर्त्त

हो गया है, परन्तु आज यह नवीन क्या अनुभव हो रहा है ? क्या सचमुच ही जिसे कुछ लोग ब्रह्म कहते हैं, कुंछ मनीषी जगत्कर्त्ता कहकर परिचय देते हैं, जिसे कुछ परमात्मा बताते हैं , और कुछ श्रेष्ठ पुरुष भगवान् कहकर प्रतिपादन करते हैं, जिसका प्रभाव देशकालसे परिच्छिन्न नहीं है, देशकालकी सीमामें जो न कभी बद्ध हुआ था एवं न ही कदापि हो सकता है, वही परमतत्व क्या एक ब्रजवासी बालकके रूपमें सीमाबद्ध मेरे साथ खेल कर रहा है ! ओह ! यह कैसा आश्चर्य है !

पू. गुरुदेवके हृदयमें कभी तो भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनका महान् ऐश्वर्य उदय होता है और कभी उनके रूपमाधुर्यकी शत-सहस्र सुधाधारायें प्रवाहित होने लगती हैं । ऐश्वर्योन्मेषके समय पू. गुरुदेव बालक ठाकुरके चरणोंमें लुट पड़ना चाहते हैं और जिस क्षण माधुर्यका विकास होता है, उस समय उस महामरकतद्युति कलेवरको हृदयसे लगानेका मनोरथ करने लगते हैं परन्तु लीलामहाशक्ति दोनों ही क्रियाओंको करनेसे उन्हें रोक देती है। उसे लोक-मर्यादाकी रक्षा जो करनी है । वे सोचने लगते हैं – " यदि मैं इस ब्रजवासी बालकके चरणयुगल धारण करता हूँ, तो यहाँ आसीन सभी लोग मुझे उन्मत्त उन्मादग्रस्त बतावेंगे और यदि इस बालकको मैंने हृदयसे लगा लिया तो यह मेरी व्यावहारिक एक चंचल क्रिया ही सिद्ध होगी । अतः मुझे अति धैर्यपूर्वक बस, मन-ही-मन अपनेको निहाल अनुभव करना चाहिये।

इधर वह बालक भी श्रीकृष्णवेषमें सज्जित पू. गुरुदेवकी ओर एकटक निहारता मुसका रहा था।. यद्यपि मण्डलीके स्वामी श्रीरामने दूसरी ही बंदिश प्रारंभ की थी, परन्तु ठाकुर-स्वरूपने उस बंदिशको अस्वीकार कर पू.राधा बाबाके संकल्पका गीत ही गाना प्रारंभ कर दिया था। ठीक पू.राधाबाबाका मनमें विचार किया हुआ पद, उनकी ही धुन, राग एवं बंदिशमें गाता हुआ ठाकुर अपनी मनोहर मुसकानसे सम्पूर्ण वातावरणको परम रसमय बना रहा था। उसके मुखसे गीतके बोल फूट रहे थे :–

पीत वसन मोतीमाल हिये पदिक कंठमाल,
हसन बोलन गावन गंडन श्रवण कुंडल झलकैं ।
बन्यौ मोर मुकुट नटवर वपु कमलनयन श्यामसुंदर,
बाँकी भौंह टेढ़ी पाग घुँघरवारि अलकैं।।
करपद भूषण अनूप कोटि मदनमोहन रूप

अद्भुत बदनचन्द्र देख गोपी भूली पलकैं।।

पू.राधाबाबा विमुग्ध थे। उनके शरीरका रोम-रोम पुलकित था। ऊर्ध्व-रोम हुए उनकी विलक्षण दशा देख श्रीपोद्दार महाराजने धीरेसे उनके कानमें कहा–"बाबा ! बाह्य वातावरणकी ओर देखिये । यहाँ बहुत छिद्रान्वेषी हैं, तनिक संवरित होइये !" श्रीपोद्दार महाराज द्वारा सचेत किये जानेपर पू.गुरुदेव किंचित् संवरित हुए। उस दिनकी रासलीला इसी प्रकार सम्पन्न हुई।

अनवरत कृपावर्षण

अब नियमानुसार श्रीराधाबाबा रासलीला-दर्शनार्थ पहुँचने लगे। जबतक रासलीला हुई यह क्रम बराबर चलता ही रहा। श्रीपोद्दार महाराज किसी दिन सम्पादनकार्यकी अधिकतावश नहीं भी जाते, तब भी पू. गुरुदेव नियमानुसार रासलीला देखने पहुँचते ही ।

दूसरे दिनकी ही बात है। पू.गुरुदेवने रासप्रारंभके पूर्व ही संकल्प किया कि यह ठाकुर आज मेरे मनके अनुसार रासनृत्यका प्रारंभ शास्त्रीय पद्धतिसे करे, तो मैं इसमें अपने आराध्यका सत्य आवेश समझूँ ।

सचमुच कुछ ही क्षणोंमें ठाकुरने वही नृत्यपद्धति अपनायी जिसका पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाने संकल्प किया था। श्रीराधाबाबाने ऐसा विचार किया था कि नृत्यप्रारंभकी आदि शास्त्रीय प्रथाके अनुरूप प्रमुख नर्त्तक, ठाकुर नृत्यसे पूर्व नृत्यस्थलमें सुगन्धित वस्तु, चाहे इत्रसार वा पुष्पकी पंखुड़ियाँ, कर्पूर-केसर, कस्तूरीचूर्ण, और नहीं तो, विविध रंगोंमें रँगा चन्दनचूर्ण, गुलाबकी पत्तियोंका चूर्ण, कुछ भी बिखेरे। बात वही हुई । रासका पर्दा उठते ही ठाकुरने रासनृत्य प्रारंभ करनेके पूर्व सुगन्धित पुष्पपंखुड़ियोंकी माँग की। रासमंडलीके स्वामी श्रीरामजी एवं अन्य समाजी चकित थे कि ठाकुर यह स्वतंत्र आचरण क्यों कर रहा है ? परन्तु रासमण्डलमें ठाकुरकी इच्छाको सर्वोपरि समझा जाता है, अतः एक समाजीको पुष्पोंकी व्यवस्था करनेके लिये चेष्टारत होना पड़ा। जबतक समुचित पुष्प-व्यवस्था नहीं हुई , रासलीला-प्रारम्भमें विलम्ब हुआ । ज्योंही समाजी डलियाभर पुष्पराशि लाया, ठाकुरने चकित हो रहे संन्यासी श्रीराधा- बाबाके नेत्रोंसे नेत्र मिलाये। अतिशय मंद-मधुर मुसकान बिखेरते हुए अपनी सुकोमल बाल-हथेलियोंमें लघु-लघु वन्यकुसुमोंकी अञ्जलि बाँधे ठाकुर

अग्रसर हुआ और उसने अत्यन्त कलात्मक भंगिमाओंसे चतुर्दिक् निहारते हुए, अपनी पुष्पाञ्जलि सर्वप्रथम रासमण्डलमें प्रकीर्ण कर दी ।

ठीक अपने मनोनुरूप ठाकुर बने बालकका आचरण देख श्रीराधाबाबा हर्षोल्लाससे भर गये। वे अपनेको निहाल अनुभव करने लगे । कुछ ही क्षणोंमें उनके नेत्र मुँदने लगे और आसपासमें बैठे लोगोंको ठीक अनुभव होने लगा कि कुछ ही क्षणोंमें ये भावाविष्ट हो जावेंगे ।

न जाने क्यों, प्रारंभसे ही ऐसा देखनेमें आया है कि जब श्रीपोद्दार महाराज भावाविष्ट होते थे, तो श्रीराधाबाबाको हम लोग प्रायः प्रकृतिस्थ और सहज पाते थे एवं जब श्रीराधाबाबा भावदशामें देहज्ञानशून्य अवस्थाको पहुँचे होते तो श्रीपोद्दार महाराज प्रायः प्रकृतिस्थ एवं होशमें रहते। एकबार ऐसी घटना हुई कि श्रीपोद्दार महाराज लगातार पाँच दिनतक बाह्यज्ञानविरहित रहे। जब लगातार उनके द्वारा अन्न एवं जल भी नहीं ग्रहण हुआ, तो अ.सौ. माताजी(श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी) को बहुत ही चिन्ता हुई । क्या पता उनकी भावसमाधि कहीं महासमाधिमें परिवर्त्तित नहीं हो जाय, इस चिन्ताको लेकर वे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके पास आयीं। पू.गुरुदेवने उनसे हँसते हुए कहा – "चल मैया ! अभी पोद्दार महाराजको उठा देता हूँ , परन्तु माँ ! कलसे तू मुझे समाधिस्थ पायेगी। हम दोनोंमेंसे एक क्रियाशील रहेगा, चाहे मैं रहूँ अथवा वे रहें।" इस समय भी यही स्थिति थी । श्रीपोद्दार महाराज पूर्ण प्रकृतिस्थ सबकुछ देखते-समझते हुए भी पूरे व्यावहारिक हो रहे थे और राधाबाबा भावसिन्धुके अतल सिन्धुमें हिलोरें ले रहे थे ।

श्रीराधाबाबाके सम्मुख चिन्मय जगत्‌का रासमण्डल पूर्णतया अवतरित था। मेरे पूर्वाश्रमके मामाके सम्मुख वे विगत दिवसका जो वर्णन कर रहे थे, वे ही शब्द यथास्मृति यहाँ दिये जा रहे हैं। पू. राधाबाबा कह रहे थे–

"गोस्वामीजी ! रासमण्डलका जो चिन्मय चित्र उस समय मेरे सम्मुख व्यक्त हो रहा था, उसे वाणीके द्वारा कहा जाना असंभव है। यह नियम है, नेत्र देखकर पहले अपनी अनुभूति मनतक पहुँचाते हैं, तब मन वाणीके द्वारा उस नेत्रोंकी बातको कहलाता है। प्रथमतया नेत्र ही यदि दृश्य-सुखमें रुद्ध हो जावें और उनकी बात मनतक पहुँच ही नहीं पावे, तो मन वाणीको कथनके लिये कैसे अनुप्रेरित करेगा ? और नेत्रोंके दृश्यकी सुखानुभूतिमें मन भी कहीं अवरुद्ध हो जाय तो भी वाणी कुछ कह नहीं सकती । फिर भी अब हो रही

स्मृतिके संस्कारानुसार इतना ही कह पा रहा हूँ कि चिन्मय जगत् ज्यों-का-त्यों हू-ब-हू व्यक्त हो उठा था। मेरे कथनसे उस दृश्यकी सांगोपांगता वर्णन हो नहीं सकती, अतः उसकी समग्र पवित्रता, उसका सौन्दर्य, और उसकी विभुता सब मेरे वर्णन करनेसे नष्ट हो रही है, ऐसा मानकर मात्र कथ्य सुनना चाहें तो भले ही सुन लीजिये । गोस्वामीजी ! श्रीपोद्दार महाराजमें अपूर्व सामर्थ्य है, वे चाहें तो किसी भी क्षण किसीको उन्मत्त भी कर सकते हैं और उन्मत्तको एक क्षणमें ही प्रकृतिस्थ कर सकते हैं। वे यदि मेरे पास बैठे नहीं होते, और मुझे संवरित रखनेके लिये मेरी गोदमें बारंबार थपकी नहीं देते होते तो मेरी दशा सबके सम्मुख अवश्य ही हास्यास्पद हो उठती। वे ही मुझे पूरे सम्हाले भी थे, और अपूर्व रसास्वादन करा भी रहे थे । रासमण्डलका समग्र संचालन तो कल मेरे ही द्वारा मेरे संकल्पानुसार हो रहा था। ''

''रासमण्डलमें मेरे संकल्पानुसार जैसे ही ठाकुरने प्रथमतया पुष्प प्रकीर्ण किये, मैंने संकल्प किया अब ठाकुर सिंहासनासीन श्रीजीके चरणोंमें पुष्पांजलि दे । बस, तत्क्षण ही ठाकुरने श्रीजीकी ओर अपना मुख कर लिया। मेरी ओर उसकी पीठ और लहराती चूड़ा नागिनकी तरह बल खा रही थी । एक ही क्षण पश्चात् ठाकुरने मेरी भावलीलाकी सांगोपांग अनुकृति करते हुए श्रीजीके चरणोंमें अपने मयूरमुकुटकी कोर छुवायी और तब भ्रूभंगिमाओंसे मधुरतम कटाक्षोंकी वर्षा करता हुआ उन्हें निहारने लगा। गोस्वामीजी ! भ्रूभंगिमाओंका ऐसा नर्त्तन कुशल-से-कुशल नृत्यकार भी नहीं कर सकता, यह कटाक्ष-वर्षा मात्र चिन्मय भाव-जगतमें ही संभव है, परन्तु मैं चकित था कि यह साधारण ब्रजवासी किशोर कैसे कटाक्ष-मालाका निर्माण अपने भ्रूसंचालन से कर पा रहा है।''

पू.गुरुदेवने तत्क्षण ही रासमण्डलके चारों ओर दृष्टिपात किया। श्रीघनश्यामदासजीकी छतके चतुर्दिक् तो दूसरे अन्य लोगोंके मकान थे। वहाँ सघन सुरम्य वन तो दिखना संभव ही नहीं था। परन्तु पू.गुरुदेवको चतुर्दिक् परम सुरम्य वन दृष्टिगोचर हो रहा था। निशा भी राकाशशिसे पूर्णतया उद्भासित हो रही थी। सुरम्य परम सुन्दर वन-वृक्षों पर कहीं अगणित शुक, कहीं पंक्तिबद्ध सारिकायें, कहीं कोकिलाएँ ही कोकिलाएँ , कहीं मयूर विराजित थे। सभी विहंगम शान्त उत्फुल्ल-पंख आनन्दविभोर थे। यह सब दृश्य-परिवर्त्तन पू.गुरुदेवको चकित कर रहा था।

सहसा उन्होंने संकल्प किया कि आज ठाकुरको पदकी तीसरी पंक्तिसे प्रारंभ कर **"बन्यौ मोरमुकुट नटवरवपु"** पदगायन करना चाहिये। ठाकुरने ठीक वही किया। अपनी सहज चंचलतासे आँखें नचाता हुआ पहले तो बालक घनश्याम जो ठाकुर वेषमें था, श्रीराधाबाबाकी ओर मंद मुसकान बिखेरता रहा, तत्पश्चात् अपने अग्रज श्रीरामजी, जो हारमोनियम लिये रास-संचालन कर रहे थे, और हरिवल्लभजी कीर्तनिया, जो मुख्य गायक थे और सारंगी लिये थे, दोनोंके पास पहुँचा और उनको दरबारी कानड़ाकी धुन बजानेको प्रेरित कर गा उठा –

कर-पद भूषण अनूप, कोटि मदनमोहन रूप,
अद्भुत वदन चन्द्र देख गोपी भूली पलकें... ...
बन्यौ मोरमुकुट नटवरवपु कमलनयन श्यामसुन्दर
बाँकी भौंह, टेढ़ी पाग, घुँघरवारी अलकैं ... ...

श्रीराधाबाबा पुनः किसी दूसरे लोकमें ही डूब गये थे। उनके नेत्रोंसे यह जगत सर्वथा तिरोहित हो चुका था। उन्होंने श्रीपोद्दार महाराजकी ओर देखा – वहाँ उनके स्थानपर उनके इष्ट ही मयूरमुकुटी वंशीधारी वेषमें विराजित थे, जितने दर्शक थे, सभी श्यामसुन्दर रूपमें ही उन्हें दृष्टिगोचर हो रहे थे। चिन्मय जगतके रासमण्डलमें ललिता एवं मधुमती मञ्जरीकी सुकोमलतम अंगुलियाँ वीणाके तारोंको झंकृत कर रही थीं। श्री तुंगविद्याजीकी कमलदल-सी हथेलियाँ मृदंगमें थाप दे रही थीं, उसकी सुकोमलतम किसलयके समान अंगुलियाँ मृदंगवादनमें थिरक रही थीं । इन्दुलेखाके चरण घुँघुरुओंकी झंकार कर रहे थे । श्री राधाबाबाने संकल्प किया – आज तो इन्दुलेखाके नेतृत्वमें सखियोंका नृत्य प्रारंभ होना चाहिये ।

पू.गुरुदेवके संकल्प करते ही इन्दुलेखा बना एक शिशु बालक उठा और उसने सबके आगे आकर विलक्षण प्रीतिभंगिमाओं सहित थिरकना प्रारंभ कर दिया। पू.श्रीगुरुदेव तो नृत्यकलाके अति उत्कृष्ट कलाकार थे और अतिशय पारखी भी थे, इन ब्रज़वासी बालकोंमें, जो शास्त्रीय नृत्यकलाकी शिक्षा भी ग्रहण नहीं किये थे, ऐसी उत्कृष्ट कलाकी अभिव्यक्ति देखकर मुग्ध हो उठे थे। वह इन्दुलेखा बना अतिशय छोटा बालक जिसे अभी नृत्यके अभ्यासके लिये भाव-प्रौढ़त्व भी प्राप्त नहीं हुआ थो, ऐसी उत्कृष्ट कलाका प्रदर्शन कर रहा था कि सभी दर्शक वाह-वाह कर रहे थे।

अब श्रीराधाबाबाने संकल्प किया कि मेरे भावानुसार तो प्रिया-प्रियतम स्वरूपधारी दोनों बालकोंको चालक एवं चारी नृत्य प्रस्तुत करना चाहिये। पू. गुरुदेवके मनमें ऐसा विचार आते ही तुरन्त रास-समाजकी सखियोंने घेरा बना लिया और प्रिया-प्रियतम बने बालक चालक एवं चारी नृत्य प्रस्तुत करने लगे।

श्रीराधाबाबा चकित थे। सर्वेन्द्रिय मनोहारी श्रृंगारमयी कल्लोलिनीकी धारा सर्वत्र प्रवहमान थी।

इस प्रकार इन अनेक दिनोंमें पू.गुरुदेवने नौ-दस प्रकारसे मन-ही -मन परीक्षायें लीं और प्रत्येक बार श्रीगुरुदेवको अपने आनुगत्यसे चकित करता हुआ ठाकुर उनके मनोगत संकल्पानुसार सारी लीला सम्पादन करता रहा। इन दिनों तो लीलाके समस्त पात्र उनके संकल्पानुसार ही कार्य कर रहे थे। इन दिनों रासलीला सम्पूर्णकर जब श्रीराधाबाबा, श्रीपोद्दार महाराजके साथ अपने निवास लौटते, तो उनकी विलक्षण भाव-दशा रहती थी ।

पू.गुरुदेवकी शय्यापर अपूर्व चिन्मय सज्जा

श्रीराधाबाबा, श्रीपोद्दार महाराज एवं श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी महाराजका प्रतिदिन रासदर्शन करने आना और इन सभी महापुरुषोंके मुखमण्डलोंपर प्रतिदिवस ही परम दिव्य सात्विक अष्ट-विकारोंका प्रादुर्भाव और विकास देख-देखकर समग्र रासमण्डलीवालोंका मन इन विभूतियोंपर श्रद्धान्वित हो उठा था। फिर रासमण्डलीवाले ऐसा भी अनुभव कर रहे थे कि अधिकांश दर्शक इन तीनोंके प्रति अतिशय आत्मीयतासे परिपूर्ण हैं एवं इनके प्रति सभी पर्याप्त श्रद्धा और आदर भी रखते हैं अतः एक दिवस बिना कोई निमंत्रण पाय सभी रासमण्डलीवालोंने इनके निवास गीतावाटिका जानेका निर्णय ले लिया। श्रीठकूरी बाबूका एतदर्थ गीतावाटिका फोन भी चला गया। भाई रामदासके द्वारा सादर निमंत्रण पानेसे श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी एवं उनकी पुत्री सावित्रीबाई भी प्रतिदिन ही रासदर्शन करने पहुँच ही रही थीं । श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी तो ब्राह्मणसेवी होनेसे मण्डलीको भोजन करानेकी भी रुचि रखती थीं, परन्तु क्योंकि गीतावाटिका, जहाँ पू.पोद्दार महाराज निवास करते थे, श्रीसेठजीकी व्यक्तिगत सम्पत्ति थी और श्रीसेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) रासलीलाके विरोधी थे, उन्होंने संकोचवश मण्डलीको भोजनार्थ

नहीं बुलाया था। जब श्रीठकुरीबाबूके यहाँसे रासमण्डलीका बिना निमन्त्रण दिये ही स्वतः आगमनका समाचार अ.सौ. माताजीको मिला तो घरमें सभीको उत्साह और आनन्द ही हुआ।

श्रीठकुरीबाबूके पा घोड़ेकी एक टमटम (बग्घी) थी। अतः उसी दिन मध्याह्नमें भोजनोपरान्त लगभग दो-तीन बजे सभी स्वरूपोंसहित मण्डली टमटमपर चढकर वाटिका पहुँची ।

श्रीपोद्दार महाराज गीतावाटिकामें बने उनके निवास(कोठी)के ऊपरी भागमें अपना कल्याण-पत्रिकाका सम्पादनकार्य करते थे। सभी मण्डलीके परिकर टमटम (बग्घी)से उतरकर श्रीपोद्दार महाराजके कमरेमें चले गये। ठाकुरस्वरूप बननेवाले बालक घनश्याम और श्रीजीका स्वरूप धारण करनेवाले बालक कुञ्जबिहारी – दोनोंके आकर्षणके मुख्य केन्द्र श्रीराधाबाबा थे, अतः ये दोनों बालक मण्डलीके सभी समाजियोंसे पृथक् होकर चुपचाप, किसीको भी बिना बताये, श्रीराधाबाबा कहाँ रहते हैं, यह पूछते हुए उनकी कुटियाकी ओर अग्रसर हो गये। श्रीराधाबाबाकी कुटिया श्रीपोद्दार महाराजकी कोठी(निवास)के पिछवाड़े बनक्षेत्रमें अति एकान्तमें थी ।

यह वही वनक्षेत्र था, जिसमें श्रीपोद्दार महाराज देवर्षि नारद एवं अंगिराऋषिसे वार्त्तालाप कर चुके थे। उन दिनो उस वनक्षेत्रका वातावरण इतना शान्त, सात्विक था कि उस क्षेत्रमें प्रवेश करनेवाला कोई भी व्यक्ति उस देवोपम स्थानसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता था। फिर एकाकी, लीची एवं अमरूदादि घने वन-वृक्षोंसे घिरी, दीमकलगे किवाड़ोंसे युक्त, जर्जरित, राधाबाबाकी कुटिया तो पूर्णतया उनके आराध्य, विशुद्ध सत्वके सार श्रीराधा-माधवके प्यारका प्रासाद ही थी। प्यार तो टूटे-फूटे एकाकी वन-वृक्षोंके तले निर्मित भग्न गृहोंमें ही पलता है। वैकुण्ठ एवं ब्रह्मलोकका वैभव इन स्थानोंकी तुलनामें निर्मञ्छन कर फेंक देनेके तुल्य ही प्रतीत होता है। बालक घनश्याम और श्रीजी बननेवाले बालक, दोनोंने चुपचाप कुटियाके पिछवाड़ेमें बनी एक गवाक्षिकासे झाँककर देखा – पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा अपनी कुटियामें लेटे-लेटे ही जप कर रहे थे । उनके दक्षिण हाथमें तुलसीकी माला थी और वाम हस्तमें मालाओंकी गिनती करनेके लिये कमलाक्षकी माला थी । पू.गुरुदेवके नेत्रोंसे टप-टप स्नेहाश्रु झर रहे थे। नयनोंसे झरते अश्रुविन्दुओंने उनके मस्तकको आधार देनेवाले उपधान (तकिये) के अर्धभागको पूरा गीला कर दिया था।

ठाकुर घनश्याम, श्रीकिशोरी बननेवाले बालक – कुञ्जबिहारीको पू.राधा-बाबाकी वह अलौकिक प्रेमभरी छवि दिखाने लगा। कुछ क्षण तो दोनों ही बालक उस अति नेहिल छविको विस्मित हुए-से देखते रहे तत्पश्चात् दोनों ही उस कुटियाके मुख्यद्वारकी ओर चले आये ।

श्रीराधाबाबाकी यह एक विलक्षण सिद्धि ही थी कि वे परिचित-अपरिचित सभी व्यक्तियोंको अपने-से-अपने लगते थे। इस सिद्धिका कारण जीवमात्रके प्रति उनका अतिशय विकसित आत्मभाव ही था। ब्रजभूमिसे समागत बालकद्वय भी पू.राधाबाबाकी इस आत्मभावनाके वर्त्तुलमें निस्संकोच प्रविष्ट हो गये और अपनी बालसुलभ चपलताका अति निस्संकोचभावसे प्रदर्शन करते हुए उनका निरुद्ध द्वार खटखटाने लगे । किसी साधननिरत साधुको इस प्रकार विक्षेप नहीं करना चाहिये – इस शिष्टाचारकी भावनाको उनके भीतर उत्पन्न निस्संकोच प्रेम और आत्मभावने पूरा समावृत कर लिया था। उन्हें श्रीराधाबाबा श्रद्धाभाजन लग ही नहीं रहे थे । उनके लिये तो वे महात्मा थे ही नहीं, अपने-से-अपने आत्मीयजन बाबा थे, जिनसे वे निस्संकोच सहज चपल बाल-क्रीड़ा करनेका पूर्ण अधिकार रखते थे ।

पू. गुरुदेव उठे। उन्होंने हाथकी माला पूरी किये बिना ही तकियेके नीचे रखी। अश्रुसिक्त तकियेको एक लघु वस्त्रसे ढँका और अपने बहते अश्रु पौंछकर दरवाजा खोलनेको उद्यत हुए। पू.गुरुदेवने ज्योंही दरवाजा खोला बिना किसी पूर्व सूचनाके समागत दोनों बाल-अतिथि ठाकुर एवं ठकुरानीको सम्मुख पाकर चकित हो गये। कुटिया भी उनकी अति लघु ही थी। अतः दोनों बालकोंको अपने गेरुवे-वस्त्रावृत पट्टेपर ही उन्हें आसीन कराना पड़ा । वे स्वयं नीचे भूमिपर ही उनके चरणोंमें बैठ गये। युगल बाल-स्वरूपोंके मनमें तो किसी भी प्रकारके संकोचका कोई प्रश्न ही नहीं था, वे दोनों निस्संकोच पू. गुरुदेवके शय्या-पट्टपर बालचापल्य करने लगे ।

पू.श्रीगुरुदेवके पास सुगन्धित पुष्पोंके सुन्दर गुँथे हुए दो हार रखे थे । उन्होंने एक पुष्पहार ठाकुर बननेवाले बालकको एवं दूसरा पुष्पहार श्रीजी बननेवाले बालकको पहना दिया।

श्रीराधाबाबाकी दृष्टिमें तो दोनों बालक प्राकृत ब्रजभूमिके किसी ब्रजवासी ब्राह्मण गृहस्थकी कामज सन्तान थे नहीं, उन्हें तो वे उनके परमा-राध्य तत्वकी पूर्ण संग्राहक दो विभूतियाँ ही प्रतीत हो रहीं थीं।

कहते हैं कि सर्वप्रथम ब्राह्मण ब्रजवासी बालकोंद्वारा रासाभिनयका प्रारम्भ अनन्य-रसिकाचार्य स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज द्वारा कराया गया था। किंवदन्ती तो यही है कि स्वामीजी इन स्वरूपधारी ब्रजवासी बालकोंको अनादि, अनन्त, अजन्मा, साक्षात् कुञ्जबिहारी एवं निकुञ्जबिहारिन स्वामिनीजी ही समझा करते थे । वे इन्हें दिव्य चिन्मय प्रेम-पुत्तलिकायें मानकर स्वयं इनकी सहचरी होकर इनके नित्य विहारसुखसिन्धुमें डूबे रहते थे । हरिदास स्वामीजी श्रीललिता सखीके अंशरूपमें अवतरित माने जाते थे । उनकी निष्ठाको लेकर आज भी वृन्दावनमें निधिवनमें प्रतिदिन रास होता है ।

इसी परंपराका पालन करते हुए श्रीवीठलविपुलजी भी जो स्वामी श्रीहरिदासजीके प्रमुख शिष्य थे, इन ब्रजवासी रासाभिनय करनेवाले बालकोंमें चिन्मय भाव ही रखते थे। ये निधिवन(वृन्दावन) में रहते और श्यामाश्यामके नित्य विहारसुखमें ही तल्लीन रहते । अपने गुरु स्वामी श्रीहरिदासजीके नित्यलीलाप्रवेशपर इन्हें असह्य विरहवेदना हुई। इन्होंने अन्न-जल त्यागकर मौन धारण कर लिया और संसार-दर्शनका निषेध करते हुए अपनी आँखोंमें पट्टी बाँध ली। ये स्वामीजी श्रीहरिदासजीके पश्चात् सम्प्रदायके प्रथम आचार्य हुए हैं ।

इस सम्बन्धमें ब्रजवासी भक्तोंमें यह सवैया कहा जाता है:–

स्वामी हरिदास बिनु भयो है वियोग भारी
भूल गये खान-पान महा खेद पायो जू
बाँधि लईं आँखैं अभिलाषै कबै जाय मिलौं
छाय रह्यौ प्रेम उर बोलिबो गमायौ जू ।।
बिट्ठल बिपुल नाम तिनकी निहार गति
चकित चकोर चित सोचमें समायो जू।।

श्रीबीठलविपुलजीकी ऐसी दशा देख सन्त-समाजमें खलबली मच गयी। सबने मिलकर उनका यह मरणव्रत छुड़ानेकी योजना बनायी। रासानुकृति करनेवाली ब्रजवासीमण्डलीको आमंत्रित किया गया। श्रीवीठलविपुलजीको रासदर्शन करनेके लिये आग्रहपूर्वक आमंत्रित किया गया। वे सभी सन्तोंका अतिशय आग्रह देख रास-दर्शनार्थ पधारे। रास प्रारंभ हुआ। पूर्व निर्धारित योजनानुसार रासलीलामें बनी स्वामिनीजी नृत्य करती-करती वीठलविपुलजीके पास पहुँची। सन्तोंकी सिखावनके अनुसार उन्होंने उनका हाथ पकडकर

कहा—"बाबाजी ! नेत्र खोलो, मेरे दर्शन करो !"

स्वामी वीठलविपुलजी स्वामिनीजीकी आज्ञाका उल्लंघन भला कैसे करते ? उनकी पट्टी जैसे ही खुली, उन्हें उसी रासधारी ब्रजवासी बालकमें साक्षात् स्वामिनीजीके दर्शन हुए, साथ ही सखी ललितावेषधारी स्वामी श्रीहरिदासजीके भी उन्हें वहीं दर्शन हुए जो स्वामिनीजीके पार्श्वमें ही उनकी सेवामें नियुक्त थे। साक्षात् स्वामिनीजी एवं गुरुदेव दोनोंको ही अपने सम्मुख पाकर उनके मुखसे इतना ही निकला :

करुणानिधि मम स्वामिनी तुम पकर्‍यौ मम हाथ।
अब अतिशय करुणामयी राखौ अपने साथ।।

कहते हैं, तत्क्षण ही स्वामिनीजी उन्हें अपने साथ ही भावदेहसे निकुञ्जमें लिवा ले गयीं । वैष्णवोंको उनके निर्जीव शरीरकी ही प्राप्ति हुई ।

श्रीसन्तप्रवर रससागर प्रियादास महाराज कहते हैं—

स्वामी हरिदासजी को दास नाम वीठल है
गुरु सौं वियोग दाह उपज्यौ अपार है।
रासके समाजमें विराजे सब भक्तराज
बोलिकै पठाये, आये आज्ञा बड़े भार है।।
युगल स्वरूप अवलोकि नाना नृत्यभेद
गान-तान सुनि कान रही ना सँभार है।।
मिलि गये वाही ठौर पायौ भावतन और
कहै रस-सागर सो ताको यो विचार है।।

इसी प्रकार वृन्दावनके अन्य रसिक सम्प्रदायोंमें भी रासाभिनय करनेवाले बालकोंके प्रति साक्षात् प्रिया-प्रियतम भाव ही रहा है । श्रीहरिराम व्यासदेवजी श्रीहितहरिवंशजीके शिष्य थे। ये युगलकिशोर श्रीराधावल्लभजीकी सेवामें आठों प्रहर तल्लीन रहते और उन्हें अनेकों सात्विक श्रृंगारभावोंसे लाड़ लड़ाते। ये भी रासलीलाभिनयदर्शनके अनन्य रसिक थे। उनकी निम्न उक्ति इसका प्रमाण है:—

नैन न मूँदै ध्यानकौं करै न अंगन न्यास ।
नाच गाय रासहिं मिलैं बसि वृन्दावन बास ।।

एक बार व्यासदेवजी रासलीलादर्शन कर रहे थे। रासमें नृत्य करते-करते राधारानीके चरणोंका एक नूपुर निकल गया। श्रीव्यासदेवजी भावनिमग्न थे ।

उन्हें तो रासधारी बालकके रूपमें साक्षात् चिन्मय श्रीराधाकृष्ण ही दिख रहे थे। वे अतिशय भावावेशमें नूपुर बाँधनेको उठे। उन्हें डोरा कहाँसे मिलता। उन्होंने अपना यज्ञोपवीत तोड़ा और उससे वह नूपुर बाँध दिया। वैदिक धर्म और सामाजिक रीतिनीतिके प्रतीक उस यज्ञोपवीतको श्रीराधारानीके चरणोंमें समर्पित करनेकी निष्ठासे श्रीराधारानीने उन्हें रासेश्वरीके रूपमें तत्क्षण ही दर्शन दे दिये ।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा इन दोनों ठाकुर एवं श्रीजीका वेष धारण करनेवाले बालकोंको अपने शय्या-पट्ट पर बिठाकर और स्वयं उनके चरण प्रान्तमें बैठकर इन्हीं पुरातन वैष्णवाचार्योंकी रास-निष्ठाके गहन विचारोंमें डूबे थे। कितना समय व्यतीत हो गया, उन्हें ज्ञान ही नहीं रहा। इधर मण्डलीके सभी समाजी पोद्दार महाराजके पास बैठे दोनों स्वरूपोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अतः उन्होंने पू. गुरुदेवको भी वहीं बुलानेके लिये सन्देश भेज दिया। पू.गुरुदेव सन्देश पाकर तुरन्त संवरित हो, खड़े हो गये और रासधारी दोनों बालकोंको लेकर पोद्दार महाराजके कमरेकी ओर चल पड़े। दोनों बालकोंमें स्वाभाविक चंचलता तो थी ही। वे अपनेको पहनाये गये गजरोंको वहीं पू.गुरुदेवके शय्या-पट्टपर छोड़ उनके साथ हो लिये। कुछ क्षण तो बालकोंने पू.गुरुदेवका अनुगमन किया तत्पश्चात् पुनः उन्हें छोड़कर उनकी कुटियामें अकेले ही चले गये। इन दोनों बालकोंने पुनः कुटियामें आकर उन दोनों गजरोंको श्रीराधा-बाबाके शय्यापट्टपर इस कलात्मक रीतिसे सजाया कि देखनेवाला आश्चर्यचकित हो उठे। इस प्रकार दोनों गजरोंसे श्रीगुरुदेवका शय्यापट्ट सजाकर कुटियाके पट यथावत् बन्दकर दोनों ही अपने संगी-साथियोंसे आ मिले।

श्रीपोद्दार महाराज तो रासधारियोंका सत्कार करनेके लिये ही पू.राधा बाबाको और दोनों स्वरूपोंको स्मरण कर रहे थे, अतः जैसे ही वे वहाँ उनके पास पहुँचे रासधारियोंका चरणपूजन एवं सत्कार प्रारंभ होगया। सभी स्वरूपोंको यथाशक्ति अधिक-से-अधिक सम्मान देकर उन्हें बिदाई दे दी गयी । बचे लोग अपनी बर्ध्दीपर बैठकर अपने डेरेपर वापस लौट गये।

स्वरूपोंके बिदा होते ही पू.गुरुदेव अपनी कुटियापर पहुँचे। उनकी दृष्टि अपने शय्यापट्टपर स्वाभाविक ही गयी। वे शय्यापट्टपर किया गया श्रृंगार देख आश्चर्यचकित थे।

पू.राधाबाबाने अपने भावराज्यमें आज निकुञ्जमें स्वयं अपने हाथों

श्रीयुगलसरकारका पुष्पाभरणोंसे जो श्रृंगार किया था, जिस भाँतिसे उनकी शय्या निर्माण की थी ! उस भावशय्यामें प्रिया-प्रियतमको आसीनकर पुष्पमालाओंसे उनकी जैसी सज्जा की थी, हू-ब-हू वही छवि यहाँ उनके नेत्रोंका दृश्य बन रही थी। कहीं किसी भी अंशमें कोई त्रुटि नहीं रही थी। इन दोनों ब्रजवासी बालकोंको उनके भावजगत्‌का क्या पूरा-पूरा ज्ञान है ? क्या ये सचमुच ही अन्तर्यामी हैं ? क्या ये ब्रजवासी बालक न होकर सचमुच ही सर्वनियन्ता मेरे आराध्य श्रीकृष्णचन्द्र और श्रीराधा ही हैं ? क्या सचमुच ही मेरे आराध्यका आत्मप्रकाश इन बालकोंमें हो रहा है ? मेरा भावजगत तो परम चिन्मय है, मायिकसृष्टिमें उसकी अभिव्यक्ति तो असंभव है, फिर मेरी इस प्राकृत कुटिया और शय्यापट्टपर यह चिन्मय जगत्‌का उन्मेष कैसे मेरा दृश्य बन रहा है ? मैंने अपने भावजगतमें चिन्मय वृन्दावनके जिन पुष्पोंके सुगुम्फनसे जो अति रसमयी सुष्ठु आकृति बनायी थी, प्रथमतया तो उसकी प्राकृत अनुकृति ही संभव नहीं है, फिर इन दोनों ब्रजवासी बालकों द्वारा निर्मित इस कलाकृतिसे मेरे भ।वजगतकी मालाओंका सर्वांशतः साम्य कैसे संभव हुआ ? इन बालकोंको मेरे भावका ज्ञान ही कैसे हुआ ? और उन्होंने एक पंखुड़ीकी भी भूल न कर ठीक यह संरचना कैसे कर डाली ? मेरे भाव-वृन्दावनके पुष्प तो आनन्दात्मक, चिदात्मक हैं। वहाँका तो सबकुछ ही सर्वथा विशुद्ध, अपने कारणसे अभिन्न, अनिर्वचनीय है। फिर इन ब्रजवासी प्राकृत बालकोंने मेरे अप्राकृत भावसृजनका ज्ञान कैसे प्राप्त कर लिया और उसकी अनुकृति कैसे कर डाली ?

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा इन विचारोंमें बहते-बहते जड़वत् खड़े-के-खड़े रह गये। उन्हें दो वर्ष पूर्वकी स्मृति हो आयी। उनके आराध्य भगवान् श्रीकृष्णने आजके ठीक दो वर्ष पूर्व उन्हें प्रभातकालीन ध्यानमें कहा था –"**मैं लगभग दो वर्ष पश्चात् तेरे पास रासके ब्रजवासी ठाकुरमें उन्मिषित होकर आऊँगा।**" पू. गुरुदेवको उनके शय्यापट्टपर निर्माण की गयी पुष्पमालाओंकी सुसज्जा-शैली यही स्मृति करा रही थी ।

सबसे पहले आप मेरे कपोलपर चपत लगावें

रासका ठाकुर बालक घनश्याम श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको दादाजी कहता है। आज उसके दादाजीके यहाँ सभी मण्डलीका भोजन-निमन्त्रण है। सभी ब्रजवासी मण्डलीमें उत्साह है। इधर श्रीगोस्वामीजीकी पत्नीने रात्रिपर्यन्त जागकर पक्वान्न निर्माण किये हैं । गोस्वामीजीने भी उत्साहपूर्वक अपने घरको कदलीखम्भोंसे सज्जित किया है। आँगनमें बन्दनवारें बाँधी हैं । प्रातःसे ही गृहद्वारपर तोरण सजानेमें सभी इष्टमित्र संलग्न हैं। प्रातः होते ही स्वर्णिम रविरश्मियोंने श्रीगोस्वामीजीके घरको ज्योंही आलोकित किया, वे भी आनन्दोल्लासमें भर उठीं ।

कदली-स्तंभ, मंगलघट, बन्दनवारों एवं पल्लव-पुष्पोंसे ही सारे घरको मानो भर दिया गया है। गोस्वामीजीकी पत्नीका मन रोम-रोमसे उल्लसित है। वह पाक-रचनामें रात्रिभरसे लगी है।

"आज मेरा जन्मधारण सफल हो गया। मेरे नेत्र भी सफल हैं। मेरा कुल, मेरी विद्या, मेरी सभी पुण्यराशिका फल मुझे प्राप्त हो गया। मेरा सारा परिवार कृतार्थ हो गया। अपने पुरुषार्थसे नहीं, मेरे अग्रज धर्मभ्राता भाईजी श्रीपोद्दार महाराजके संगने मुझे सर्वथा कृतार्थ बना डाला। मेरे घरपर आज वे बालक भोजन-प्रसाद ग्रहण करेंगे, जिन्होंने रासलीलानुकरण करके प.पू. श्रीराधाबाबा एवं स्वयं श्रीपोद्दार महाराज जैसे पुण्यपुरुष सन्तोंको भावविभोर कर दिया और मुझे भी अलौकिक चिज्ज्योतिके दर्शनसे कृतकृत्य कर दिया।"

"जिस बालकमें अनादि मोहान्धकारको सर्वथा नष्ट कर देनेवाले विशुद्ध ब्रह्मरूप अंकुरका उन्मेष होता है; जिसपर मेरे गुरुतुल्य पू.राधाबाबाके इष्ट मूर्त्त होजाते हैं; जो उनके इष्ट – साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके पूर्व निर्देशानुसार हम सबको दर्शन देकर कृतार्थ करने ब्रजप्रदेशसे यहाँ गोरखपुर आया है; जिसका मानस इतना पवित्र है कि संतोद्घोषित परम आनन्द सुधा-सागरका उद्गमस्थल जिसमें लीलायमान हो उठता है, जो बालक यंत्रवत् श्रीराधाबाबाके मानस-संकल्पोंको अपने लीला-आचरणोंमें अवतरित कर देता है

ओह ! वह आज मेरे घरपर अपना प्रसाद बिखेरेगा !"

परम श्रद्धापूत अन्तःकरणधारी श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजी इन्हीं विचारोंमें डूबे, उन पावनतम क्षणोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब स्वरूपधारी सभी बालकोंके चरण-प्रक्षालनकर, चरणोदक ग्रहणकर, वे कृतकृत्य हो उठेंगे।

इधर तो श्रीगोस्वामीजी उत्सवावेशमें रात्रिभर विलक्षण भावदशामें स्थित रहे, उधर ठाकुर बननेवाला बालक घनश्याम भी निशापर्यन्त विलक्षण प्रेमदशामें विभोर रहा है । उसे रात्रिभर स्वप्न भी अपने 'दादाजी'के ही आते रहे हैं। अपने 'दादाजी'के पास पहुँचनेको बालक घनश्याम आतुर है। स्नेह चाहे सर्वथा ही निराविल, पूर्णतया निरपेक्ष ही क्यों न हो, स्नेहास्पदको आकर्षित तो करता ही है। बालक घनश्यामको दादाजीके स्नेहने मध्याह्नके पूर्व ही क्षुधातुर कर दिया है। मण्डलीवाले शीघ्र स्नान करें, अपने भालपर शीघ्र तिलक-छाप लगावें और ठकुरीबाबूके प्रांगणके कोनेपर पड़ी बघ्घीपर शीघ्रातिशीघ्र सवार होकर गीतावाटिका प्रस्थान करें, उसे यही त्वरा है। वह बार-बार झुँझलाता है, बघ्धीके अश्ववाहकको शीघ्र आनेका सन्देश भेजता है, परन्तु उसकी इस त्वराका दूसरे अन्य सदस्योंपर अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं देख, वह झुँझलाता है। अन्ततः उसकी मनोदशापर स्वयं भगवती लीलाशक्ति योगमायाको कान देने पड़ते हैं, ब्रजवासी रासधारियोंको शीघ्र भिजवाने संबंधी फोन गीतावाटिकासे आ जाता है ।

ठकुरीबाबूकी बग्घी तो जैसी है, वैसी ही है, परन्तु आज उनके पुत्रने उस बग्घीपर नवीन तूलपुष्ट आस्तरण(रूईभरा तोषक) लगा दिया है। तोषकके चारों ओर सेमररूईसे भराये हुए उपधान(तकिये) भी लगे हैं । श्वेत रेशमी चादर उस टमटमपर बिछायी गयी है, जो अतिशय सुन्दर फब रही है। घोड़ेकी लगाम भी रेशमकी लाल डोरीसे गूँथकर निर्मित करायी है। इसी बग्घीपर कौमारवयके मण्डलीके सभी परिकर बैठ जाते हैं, स्वामी और समाजी लोगोंके लिये बगीचेसे 'नैश' विदेशी मोटरगाड़ी भेजी गयी है। स्वामी श्रीरामजी सभी बालकोंको संयत रहने और शैशवजन्य उत्पात नहीं करनेका निर्देश देकर बग्घीको आगे बढाते हैं । सभी सोल्लास वायुकी लहरकी तरह शीघ्र ही बगीचे पहुँच जाते हैं और तब श्रीगोस्वामीजीके गृहप्रांगणकी ओर चल पड़ते हैं ।

गृहद्वारपर ही गोस्वामीजी ब्राह्मणोचित मर्यादाका पालन करते हुए

आम्रपल्लवयुक्त रजतघट लेकर सभी मण्डलीका वेदमन्त्रोंसे स्वस्त्ययन करते हैं और अपने पूजाके कमरेमें सभीको आसन देकर बैठाते हैं। क्रमशः सभीका पूजन होता है। वे अपने हाथों सभीके चरण प्रक्षालन करते हैं, और चरणोदकको सभी कुटुम्बीजनोंमें वितरण करते हैं ।

इस प्रकार भोजनोपरान्त वस्त्राभरण समर्पित कर गोस्वामीजीके घरसे स्वरूपोंको बिदा कर दिया जाता है। विदाई बेला भी अभूतपूर्व होती है। पू. राधाबाबाकी छोटी मैया(श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजीकी धर्मपत्नी) दोनों स्वरूप श्रीराधा एवं श्रीकृष्णको अपनी गोदमें बैठाकर आरती करवाती हैं। सभी मोहल्लेकी स्त्रियाँ मंगलगीत गाती हैं। तुमुल जयध्वनि होती है। उस अपूर्व प्यारभरे सम्मेलनका दृश्य देखकर उस समय हम सभीके तो पलक पड़ने ही बन्द हो जाते हैं। हम सभी देखरहे थे –

"दोनों ही राधाकृष्ण बननेवाले बालक परस्पर नेत्र मिलाये अभूतपूर्व सुन्दर लग रहे थे। श्रीगोस्वामीजीकी धर्मपत्नीका कलेवर भी प्रेमावेशसे निस्पन्द था। उसके एवं गोस्वामीजीके नेत्रकोण अश्रुपूरित थे। वास्तवमें तो दोनों वात्सल्य-सघनमूर्ति दम्पतीका प्रेम-विगलित चित्त ही अश्रुमिषसे नेत्रोंके द्वारा प्रवाहित हो रहा था और बाह्यवक्षको भिगो रहा था। यों, होना तो चाहिये था श्रीकृष्ण स्वरूपको काला और राधास्वरूपको गोरा, परन्तु वस्तुतः श्रीकृष्ण बननेवाला बालक घनश्याम गोरा था और राधा बननेवाला बालक कुञ्जबिहारी किंचित् कृष्णवर्ण(साँवला) था। उस समय इन दोनों स्वरूपोंमें सभीको ऐसी प्रेमासक्ति और प्रेमावेश अनुभव हो रहा था कि यही लगता था मानों सबसे बड़ा निबन्धन यदि विश्वमें कुछ है तो वह प्रेमबन्धन ही है।"

इस नेहोत्सवका समापन होते-होते अपराह्न हो चला। ठाकुर रात्रिभरका जगा था, अतः उसे निद्रा सता रही थी। वह शीघ्र ही अपने निवास चला जाना चाहता था। अतः गीतावाटिका आकर वह तत्क्षण ही बग्घीपर आसीन हो गया। ठाकुरके बग्घीपर बैठते ही सभी स्वरूप बननेवाले बालक भी बग्घीपर बैठ गये। परन्तु अबतक श्रीजीके स्वरूप बग्घीपर नहीं आये थे। समाजी, स्वामी श्रीरामजी एवं अन्य कीर्तनिया मृदंगवादकादि तो मोटरसे पहले ही चले गये थे। ठाकुर और स्वरूपोंको सायं पुनः रास करना है, अतः उन्हें विश्रामकी भी आवश्यकता थी। परन्तु सभीके जा पानेमें श्रीजीके नहीं होने से विलम्ब हो रहा था। ढूँढ़नेपर पता चला कि श्रीजी-स्वरूप श्रीराधाबाबाके पास कुटियामें

आसीन है। वह पू. गुरुदेवसे प्रेमालाप कर रहा था। बालक घनश्यामको पहले तो यही अच्छा नहीं लगा कि श्रीजी अकेले ही राधाबाबाके पास क्यों चले गये ? दूसरे उसके बुलानेपर भी वे पुनः तुरन्त क्यों नहीं वापस आ रहे हैं। उसमें बालोचित अधिकारभावना बलवती हो उठी थी। उसने त्वरा करते हुए दो-तीन बार श्रीजी बननेवाले बालकको बुलाया। इसके उपरान्त भी जब वह बालक नहीं आया तो ठाकुर बननेवाले बालक घनश्याममें तमतमाहट आगयी ।

पू.गुरुदेवसे वार्ता करते हुए श्रीजी बननेवाले बालकमें इतनी नेह-रसतन्मयता थी कि पू. गुरुदेव उसे जाने नहीं दे रहे थे, और उसकी स्वयंकी उठनेकी इच्छा तनिक भी नहीं हो रही थी ।

इधर ठाकुरने रोषमें भरकर कहना प्रारंभ कर दिया कि 'क्या श्रीजी राधाबाबाके घरकी हैं सो वे मेरे बुलानेके उपरान्त भी उसे आने नहीं देते ?' उसमें ठाकुरपनेका गर्व छलक आया था और साथ ही श्रीजीपर अपने अधिकारकी भावना भी।

यह सब हो ही रहा था कि श्रीजी बाबाके पाससे आ गये और सभी स्वरूप बग्घीसे निवास चले गये। उन स्वरूपोंके विदा होनेपर किसीने बालक घनश्यामका तमतमाना और उपयुक्त उक्ति कहनेकी बात पू.गुरुदेवसे कही। यह सब सुनकर पू. गुरुदेव विलक्षण भावधारामें डूब गये।

वे इसी ऊहापोहमें थे कि जब मेरे भावजगतके आराध्य श्रीकृष्ण ही इस ब्रजवासी ठाकुर-वेषधारी बालकके देहको यन्त्र बनाकर क्रियाशील हो रहे हैं, फिर इस बालकने ऐसी उच्छृंखल उक्ति कही ही कैसे ?

उन दिनों पू.गुरुदेव, श्रीजीकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा (अनंगमञ्जरी)के भावमें रहते थे। कोई नहीं जानता था कि पू. राधाबाबाके चित्तके धरातलमें उफनती मधुरातिमधुरतम कैशोर चेष्टाओंसे इस गीतावाटिका रूप ब्रजधरामें कैसी उफनती आनन्द-मन्दाकिनी प्रवाहित होती रही है। सम्पूर्ण बगीचेवासी, सम्पादकमण्डलमें कार्यरत व्यक्ति, दूर-दूरसे समागत श्रीपोद्दार महाराजके अतिथि, सभी तो उसमें अलक्षित रूपसे अवगाहन करके कृतार्थ होते रहे हैं। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा स्वयं भी इस रसमन्दाकिनीके परमानन्द-वितरण-महोत्सवका अति रसभरा आस्वादन लेते हुए ईसवी सन् १९३९ तदनुसार वि.सं.१९९६से ही क्रमशः उत्तरोत्तर उल्लसित होते रहे हैं। अपने शिष्यके इस त्रिजगन्मंगलकारी परमानन्दवितरण-महोत्सवमें हाथ बँटानेके

लिये ही मानो पोद्दार महाराज स्वयं भी साथ हो लिये हैं । श्रीपोद्दार महाराज प्राकृत जगत्‌के सम्मुख भले ही थुल-थुल तोंदिल वैश्यजातिके महानुभाव हों, परन्तु वस्तुतः तो वे साक्षात् मन्मथ-मन्मथ-मानस-मन्थिनि श्रीराधारानी, श्रीजी ही हैं। इन साक्षात् श्रीजीके अष्टयाम छायावत् साथ रहनेवाली मञ्जुश्यामा – उनकी छोटी बहिन ही यदि श्रीजीके घरकी नहीं है तो फिर श्रीजीके घरका क्या ठाकुर ब्रजराजतनय है? श्रीजीपर जो उनकी अनुजाका अधिकार है, वह ब्रजराजतनयका कैसे हो सकता है ? आजतक तो यही हुआ है कि उनकी अग्रजा राधारानीकी कैशोर वयोचित भंगिमाओंको देखनेके लिये ठाकुर उनके चरणोंमें गिरकर सदा प्रार्थना करता आया है ! मेरी भगिनीके घरकी मैं नहीं हूँ तो फिर क्या ठाकुर उसके घरका है ? क्या मेरी अग्रजा बहिनसे मेरी साधिकार अन्तरंगता ब्रजराजतनयसे छिपी है ? इस ठाकुर-वेष धारण करनेवाले ब्रजवासी बालकने, यदि सत्यांशमें यह मेरे आराध्य निकुञ्जेश्वरकी छाया लिये है, तो ऐसा उच्छृंखल आचरण कैसे किया ? मैं क्या मेरी सहोदरा बहिनके भी घरकी नहीं हूँ ? क्या मैं बृषभानु एवं कीर्तिदाकी पुत्री नहीं हूँ ? क्या मैं श्रीदाम भैयाकी सर्वाधिक लाडिली मंजुरानी नहीं हूँ ? यदि इन सभी तथ्योंसे ठाकुर परिचित है,तो इस प्रकारकी उच्छृंखल वार्त्ता वह कैसे कर गया ?मेरे आराध्य श्रीकृष्ण तो कदापि ऐसा नहीं कह सकते ! वे तो मेरे प्राणपति हैं। उन्हें तो पूरा पता है कि मेरी सहोदरा रानीपर मेरा कितना आन्तरिक अधिकार है ? ठीक है, नन्दतनय हम सभीके नयनतारा हैं, परन्तु मेरे एवं मेरी अग्रजा रानीके प्राणोपम नैकट्यसे वे अनजान कैसे हो सकते हैं ?

पू. गुरुदेव बहुत कालतक तो इन्हीं विचारोंमें लहराते रहे, फिर उन्होंने निश्चय किया कि वे बालक घनश्यामसे मिलने जावेंगे और उसके सही आन्तरिक भावोंका स्वयं पता लगावेंगे। हो सकता है, दूसरोंके द्वारा कथनमें सत्य वस्तु नहीं उभर पायी हो। इसी ऊहापोहमें उस दिवस सायंकालको वे रासलीलादर्शन करने भी नहीं जा पाये। रातमें भी वे इन्हीं विचारोंमें डूबे रहे। स्वप्नमें भी उन्हें अपने आराध्य श्रीकृष्णके दर्शन होते रहे। वे स्वप्नमें निशापर्यन्त देख रहे थे कि उनके प्रियतमके लीलामाधुर्यकी इयत्ता ही नहीं है। वे तो एक अनन्त असीम पारावार-विहीन प्रेमसुधा-सिन्धुके समान हैं, जिसमें उत्ताल तरंगें उठ रही हैं । तरंगें नाचती हैं और रासधारी ठाकुर बने बालक घनश्यामको अपने अञ्चलमें छिपा लेती हैं । फिर वहाँसे उन्मादिनीकी तरह

हँस-हँस कर सभी दिशाओंमें फैल जाती हैं तथा तब सारे ब्रजपुरको, समस्त विश्वको प्लावित कर देती हैं ।

इन्हीं तरंगोंसे सिक्त अपने हृदयमें अपने प्रियतम श्रीकृष्ण और प्रियतमा सहोदरा रानीके प्रतिबिम्बित चन्द्रमुखको निभृत निकुञ्जमें युगनद्ध बाहुयुगल मञ्जुश्यामाभावमें श्रीराधाबाबा अनवरत देखते, सोये रहे । आज एक प्रहरसे अधिक रात्रि अवशिष्ट थी, तभी वे जाग गये थे। वे स्नानादिसे निवृत्त होकर अपनी कुटियाके एक कोनेमें लगे आसनपर बैठ गये और भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी अर्चनामें संलग्न हो गये। आज एक प्रहर दिनतक वे पूजामें ही संलग्न रहे और उन्होंने अपनी प्रातः एवं मध्याह्न दोनों कालकी पूजा एक साथ ही सम्पन्न की ।

अब एक प्रहर दिन चढ़ आया था । अभी भी ब्रजवासी ठाकुरको अनुशासित करनेका भाव उनके मनसे नहीं हटा था। पू. गुरुदेवके मनमें बालक घनश्यामके सही अन्तरिक भावोंको अन्वेषण करनेकी जिज्ञासा अभी तक ज्यों-की-त्यों थी । उन्होंने मोटरगाड़ी श्रीपोद्दार महाराजसे माँगी और जहाँ रासमण्डली ठहरी थी, वहीं ठकुरीबाबूके घरकी ओर मोटरगाड़ीमें बैठकर चल पड़े ।

जब पू. गुरुदेव स्वरूपोंके निवासकी ओर बढ़ रहे थे , तो उस समय उनके मनमें यही विचार उठ रहा था कि पहुँचते ही सबसे पहले ठाकुर घनश्यामको चपत लगाऊँगा और तब उससे इस अनर्गल वार्त्ताका हेतु जाननेकी चेष्टा करूँगा । मनोरथोंके प्रवाहमें बहते हुए ही पू.श्रीराधाबाबाने अपना कार्यक्रम भी निर्धारित कर लिया था ।

लगभग मध्याह्न हो चला था। उस समय सभी स्वरूप अपने निवासके ऊपरी कक्षमें भोजन कर रहे थे । एकमात्र ठाकुर-स्वरूप धारण करनेवाला बालक घनश्याम ही नीचे, घरके बाहरी चबूतरेपर चुपचाप टहल रहा था ।

जैसे ही पू. गुरुदेवकी मोटरगाड़ी चबूतरेके पार्श्वमें खड़ी हुई सभी मण्डलीवालोंके आनन्दकी सीमा नहीं रही। अमृत पीकर आनन्दोन्मत्त हुए प्राणीकी तरह बालक घनश्याम तो दौड़ पड़ा । सभी मण्डलीवाले भोजन करते-करते ही अञ्जलि बाँधकर ऊपर दूसरे तल्लेकी गवाक्षिकासे ही प्रणाम करने लगे। भक्तिके प्रबल आवेगसे सभी चञ्चल हो रहे थे, उन्हें भोजन स्वादिष्ट ही नहीं लग रहा था। अत्यंत उल्लसित हुआ बालक घनश्याम लपक

कर पू. गुरुदेवकी मोटरतक आगे बढ़ा। पू. गुरुदेव कारमें ड्राइवरके पास अगली सीटपर बैठे थे। बालकने अगली सीटका दरवाजा खोला और पू. गुरुदेवको हाथ पकड़कर उतारा। किसी विद्युल्लहरीने पू. राधाबाबाको स्पर्श कर लिया हो, इस तरह वे आसनसे उठ पड़े । बस, मोटरके बाहर आकर खड़े ही हो सके कि घनश्याम बोल उठा –" सबसे पहले आप मेरे कपोलोंपर चपत तो लगाइये । "

पू.गुरुदेवने बालकके मुखसे जैसे ही अपने मनकी सोची हुई बात सुनी, वे भाव-विभोर हो उठे । इसके पश्चात् तो उनका शरीर जड़वत् हो गया। वे रासधारियोंके भोजनके बगलवाले कमरेमें जाकर ध्यानस्थ हो गये। मैं उनके साथ ही मोटरमें आया था। मैंने देखा– " उनके नेत्र स्थिर हैं, किन्तु अन्तरमें पूर्ण चेतना थी । पू. गुरुदेव स्पष्ट सब कुछ अनुभव कर रहे थे ।" पू.राधाबाबाके आगमनका समाचार सुनकर ठकुरीबाबू भी चले आये थे । पू. राधाबाबा उनसे बोलनेकी आन्तरिक चेष्टा रखते हुए, अवरुद्धकण्ठ बोल नहीं पा रहे थे । ठाकुर घनश्याम उनके पास ही खड़ा उनकी दशा देख रहा था । उसे देखते हुए पू. गुरुदेवका मन मूक भाषामें कह रहा था–

"गोलोकविहारिन् ! तुम्हारी जय हो ! जय हो !! तुम मेरे प्रेम-मसृण चित्तमें अपने ऐश्वर्यका एक सैकत-कण भी नहीं बिखेरते हुए एवं मेरे साथ अपने समग्र मधुर सम्बन्धोंके सत्यकी रक्षा करते हुए, मुझे अपनी जो रासलीला दिखा रहे हो और मुझसे, जैसी भी अल्पतम सेवा संभव है, उसे स्वीकार कर रहे हो, यह मात्र तुम्हारी मुझपर अपार अनुकम्पा ही है। अनन्त करुणार्णव !! अपनी अनन्त करुणाका एक विन्दु देकर मेरे लिये इतना ही
विधान कर देना – यह राधाबाबा नामक प्राकृत शरीर जबतक रहे और तुम भी घनश्याम नामसे इस शरीरमें रहो, मेरे संग इसी प्रकार क्रीड़ा करते रहना। मेरे साथ तुम्हारी गोपन एवं अवगुण्ठित, प्रकट अथवा मूक, सेवा-भावना सदैव पल्लवित होती रहे । उसके पश्चात् तो हम दोनोंको चिन्मय महारससमुद्रमें पूर्णतया निमज्जित हो जाना ही है । "

बालक घनश्याम जैसे अपने प्राणप्यारे राधाबाबाकी एक-एक मूक भावनाको सुन रहा हो, आनन्दातिरेकसे पुलकित हो रहा था। उसके नेत्र छल-छल कर रहे थे । बालक घनश्यामने अश्रुजलविन्दुओंसे एक माला बनायी और अपने राधाबाबाको भेंट देकर जैसे 'तथास्तु' कह दिया था ।

पू.राधाबाबा लगभग तीन घण्टेतक लगातार सुखसागरमें निमग्न रहे। सुखमय तरंगोंमें बहते हुए ही वे तत्पश्चात् मोटरमें अपने निवासतक आये। वाटिका पहुँचनेपर भी पू.गुरुदेवकी घण्टों यही दशा रही। वे उस दिन भी रासलीला-दर्शनमें सम्मिलित नहीं हो पाये । उस दिवस जब पू.गुरुदेव ठकुरीबाबूके घरसे भावनिमग्न लौटे और अपनी निवास-कुटियाका दरवाजा उढ़काकर भाव-भरे ही शयित हो गये तो मैंने बाहर ही बैठकर उन्हें निम्न पद सुनाया –

जो सुख ब्रजमें एक घरी।
सो सुख तीन लोकमें नाहीं , धनि यह घोषपुरी।।
अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरैं,द्वारें रहति खरी।
सिव सनकादि-सुकादि अगोचर ते अवतरे हरी।।
धन्य-धन्य बड़भागिनि राधा निगमनि सही परी।
ऐसे सूरदासके प्रभुकौं चाँपति अंक भरी।।

(पदकी अन्तिम दो पंक्तियाँ मैंने बदलकर गायी थीं। पू. गुरुदेव इस पद-गायनको सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए थे । परन्तु बादमें मेरे द्वारा मूलपद में हेरफेरके कारण मुझपर किंचित् बिगड़े भी थे । मैं बालकपनसे ही ऐसा नटखटपना प्रायः कर बैठता था।

वनचारणलीला और अधरामृतरसका वितरण

"ओह ! वह सघन कुन्तलराशि, मुखचन्द्रपर बिखरी अलकावलि, घुँघराली लहराती नागिन-जैसी काली लम्बे बालोंकी लटें, छोटे-छोटे चिकुरोंसे आच्छादित ललाट, मध्यमें सुन्दर वल्लभसम्प्रदायवालोंका तिलक, विशाल नेत्र, नाचती बंकिम भौहें, वे मृदु-मृदु बोल, वे मधुस्रावी अधरयुग्म, ललित बदनारविन्द, वे चञ्चल चेष्टाएँ –

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा गीतावाटिकाके गिने-चुने लोगोंसहित लीला-दर्शनार्थ श्रीठकुरीबाबूके बगीचेमें अपराह्नमें पहुँच गये हैं । श्रीठकुरीबाबूके यहाँसे आज फोनपर गीतावाटिकामें निमन्त्रण आया था कि आज अपराह्नमें उनके बगीचेमें

रासमें गोचारण-लीला सम्पन्न होगी। लीला प्रारम्भ हो चुकी थी। पू.राधाबाबाको पहुँचनेमें किञ्चित् विलम्ब हो गया था। अपने आसनमें बैठते-बैठते ही उनकी दृष्टि सर्वांगोंसे पूर्ण श्रृंगारित्त सम्मुख खड़े अपने साँवरे प्रियतमपर पड़ी थी। प्रथम दृष्टि पड़ते ही उनका तो जागतिक दृश्य ही बदलकर दूसरा हो गया । "अहा ! इस सौन्दर्यमें कितनी मादकता भरी है—ऐसी मादकता,जो मन-प्राण-इन्द्रियोंको विमोहित कर दे। पू.गुरुदेव स्तब्ध थे। वह प्राकृत रासधारी बालक तो हो ही नहीं सकता। इसकी शोभा तो सम्पूर्ण श्रृंगारोंको श्रृंगारित कर रही है। फिर ऐसा अनमोल चिन्मय मणि-प्रकाशोंसे झलमलाता श्रृंगार इस भूतलमें तो होना ही असंभव है। इन अर्थाभावी ब्रजवासियोंको ऐसा अनमोल शुद्ध माणक,मुक्ता और वज्रमणियोंसे जटित श्रृंगार कहाँसे प्राप्त होगा ? ठकुरीबाबूसे भी मैं तो पूर्णतया परिचित हूँ। उनकी तो आर्थिक स्थिति भी ऐसी नहीं कि इस मणिमय श्रृंगारकी व्यवस्था कर सकें ! पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा रासधारी ठाकुरपर प्रथम दृष्टि पड़ते ही गहन विचारोंमें डूब गये थे ।

"ओह, यह रूप ! ऐसी अतुलित शोभा !! अहा ! इसके अधरोंसे तो चिन्मय दिव्य सुधारसका निर्झरण हो रहा है ! " पू.गुरुदेव उस चिन्मय रस-निर्झरणको पीते हुए मत्त होते जा रहे हैं । इस मत्तताके आवेशमें ही इनके अन्तस्तलमें आज सहसा एक वासना जाग उठी । "सत्यशः ही क्या यह चिन्मय राज्यका महामधुमय सुधारस है ? कहीं मेरी नित्यकी लीला-भावना ही तो यहाँ इसे यह रंगत नहीं दे रही है ? यदि सत्य-सत्य इस ब्रजवासी बालकके ही अधरोंसे यह अमृत निःसृत हो रहा है, तो यह ठाकुर मेरे संकल्पानुसार निम्न चेष्टाएँ करे। प्रथमतः यह ठाकुर अपने अधरोंसे वंशीनिनाद करे। सचमुच ही चिन्मय रसनिर्झरणसे सना वंशीनिनाद मेरे मनको सम्मोहित कर देगा, और मुझे कुछ अभूतपूर्व दर्शन होगा। फिर यह तरुपत्रोंको मोड़कर स्वनिर्मित वाद्ययंत्र(सीटी) बनावे और अपनी मधुरातिमधुर चिन्मय अधरसुधाको उस सीटीमें भरकर फूँक लगावे ! उससे जो परम चिन्मय रसीली ध्वनि निस्सृत होगी उससे यहाँ कुछ अलौकिक चमत्कार घटित होना चाहिये। वह चमत्कार मुझे स्पष्ट दृटिगोचर हो। तीसरे, यह श्रृंगीनाद करे और उससे मेघगंभीर ध्वनि निकले। उस ध्वनिसे यहाँ सांध्यगगनमें इन्द्रधनुषका निर्माण हो। फिर यह अपने कर-कमलोंको ही शंखाकृति देकर अपने हाथोंसे ही ऐसी ध्वनि निकाले कि ठकुरीबाबूका समग्र बगीचा गुञ्जायमान हो उठे ।

इतनी बातें यदि इसके द्वारा एकके पश्चात् एक सम्पादित हो उठेंगी तो मैं इसके द्वारा स्वतः प्रदत्त इसके अधरोंसे सना आधा खाया कोई फल चखूँगा और चिन्मय दिव्य सुधारसके निर्झरणकी सही पहचान करूँगा ।"

पू.राधाबाबा तो अपनी जानमें अपने मनमें मनोरथोंके चित्र अंकित कर ही रहे थे, परन्तु वे मनोरथ वस्तुतः अंकित हो रहे थे अनन्तैश्वर्यनिकेतन भक्तवाञ्छा-कल्पतरु, प्रेम-प्यारके भूखे, सर्वान्तर्यामी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मनःपटल पर ।

श्रीराधाबाबा तो अपने विचारोंमें तल्लीन ही रहते, परन्तु उनके विचारोंका स्तंभन ठीक उस समय हुआ जब ठाकुरने अपने बिम्ब-विडम्बी अधरोंपर वंशी धारण कर ली।

इस ठाकुरने तो वंशीवादनकी शिक्षा ही नहीं ली है। इसे तो इस हरे बाँसकी बाँसुरीमें फूँक लगाना ही नहीं आता ! जबतक फूँक ही सम नहीं लगेगी , तबतक स्वरमें सुरीलापना आ ही नहीं सकता । परन्तु ठाकुर वंशीमें फूँक अवश्य दिये जा रहा था । और इन फूँकोंके लगते ही एक चमत्कार घटित हुआ। वह चमत्कार भी अन्य सभीको नहीं दिख पाया, उसे देख पाये अकेले श्रीराधाबाबा ही । श्रीराधाबाबाकी मन-इन्द्रियाँ एक अभिनव रसमाधुरीसे परिप्लुत हो उठीं। वे देख रहे थे–" नवकमल-जैसी शोभा इसके विशाल नेत्रोंकी है। बिम्बफलके सदृश इसके अधर हैं । उनपर मन्द मुसकान छायी है। सजल जलदकी-सी कान्ति अंगोंकी है। अत्यंत मनोहर बालवेष है। मधुर सुन्दर मन्दगतिसे यह चलता है । चरणोंमें मञ्जीर एवं नूपुर सुशोभित हैं । कटिदेशमें नवरत्न-काञ्ची विभूषित है। काञ्चीसे रुनझुन-रुनझुन शब्द हो रहा है । गलेमें सुन्दर हार है । हारमें व्याधिनिवारक यन्त्र-प्रतीक व्याघ्रनख पिरोये हुए हैं। जननीने दृष्टिदोषनिवारक एक काला बिन्दु मुखपर लगा दिया है । इससे इसकी शोभा और भी बढ गयी है । शशधर-जैसे सुन्दर मुखपर कुञ्चित केश-कलाप सुशोभित हैं। यह कुन्तलराशि ऐसी प्रतीत होती है, जैसे नवीन घनकी नीलिमा हो ।"

पू.गुरुदेवका दृश्य एक साथ परिवर्तित हो गया था। वे अपने ध्यान-मूर्ति इष्टको ठाकुरके अंग-अंगमें विजड़ित देख रहे थे । वे बार-बार ध्यान हटाकर पुनः ठाकुरकी ओर देखते, किन्तु उन्हें वही चमत्कारिकता ठाकुर -वेष धारी बालकमें पुनः-पुनः दिखने लगती। वे ठाकुरमें कभी तो अपने इष्ट

परमातिपरम मधुर श्रीकृष्णको परिलक्षित करते एवं फिर अनन्तैश्वर्यनिकेतन परमात्माको अंकित देखने लगते।

पू.गुरुदेव चकित हो ही रहे थे कि ठाकुरने उछलकर एक लीचीवृक्षकी झुकी डालको और झुका लिया । उसमेंसे उसने लीचीवृक्षके अनेक पत्रोंको तोड़ लिया। "अरे ! यह तो इन पत्रोंको मोड़कर उनसे सीटीकी तरहका एक ऐसा यंत्र बनानेमें सचमुच ही संलग्न हो गया है और अपने ही द्वारा निर्मित इस यंत्रमें अपनी सुरभित मुख–प्रश्वास भरकर उच्चस्वरमें रसीली ध्वनि निस्सृत कर रहा है ! "

परन्तु यह क्या ? जैसे ही ठाकुरने उस स्वनिर्मित नये वाद्ययंत्रमें फूँक लगायी, सभीने चमत्कारिकरूपसे देखा कि ठकुरीबाबूके बगीचेकी गायें बड़ी मस्त चालसे चलकर आयीं और ठाकुरके आसपास उसे घेरकर खड़ी होगयीं। वैसे, सभी लोगोंने तो यही समझा कि सचमुच ही गोचारणलीलाको व्यावहारिक रूप देनेके लिये ठकुरीबाबूने ही ग्वालोंसे गायें बन्धनमुक्त करवाके रासमंडलीके पास छुड़वायी हैं । परन्तु वस्तुतः यह बात थी नहीं ।

इसके साथ ही ठाकुरने अपने फेंटमें खौंसी श्रृंगी निकाली और वह उसे भी बजाने लगा। यह श्रृंगी गायोंके टूटे सींगसे बनाया एक वाद्य होता है, जिसे ग्रामीण एवं भोपा जातिके लोग बजाते हैं । कभी ठाकुर इस श्रृंगीको बजाता और कभी इसे अपने दूसरे कलाकार गोप बनेहुए साथीको देकर अपने हाथोंको ही शंखाकृति देकर उसमें फूँक लगाता। उससे वह ऐसी गंभीर ध्वनि निकालता कि सारा बगीचा ही गुञ्जायमान हो जाता ।

पू. गुरुदेव देखरहे थे कि उनके सभी पूर्वकृत संकल्पोंके अनुसार ही ठाकुर सांगोपांग लीला कर रहा है । उनका मानस पूर्णतया चमत्कृत था ।

सहसा उनकी दृष्टि अन्तरिक्षकी ओर उठ गयी। यह क्या ? अन्तरिक्षमें तो उन्हें स्वर्गकी अमरावती नगरी दृष्टिगोचर हो रही है । यह देवनगरी तो इस प्रमोदप्रवाहमें निमग्न होकर पूर्णतया मत्त हो उठी है । अमरावतीका यह आनन्दोच्छ्वास जनलोक, महर्लोक, तपोलोकको मुखरित करता हुआ सत्यलोकको स्पर्श कर रहा है। अरे ! अरे !! जगत्स्रष्टा पितामह चतुराननकी स्रजन–समाधि टूट गयी है ।

लो, देवराज इन्द्र अपने वाहन ऐरावतमें, भगवान् शिवपार्वती वृषभवाहनमें, चतुरानन अपने हंसवाहनमें, भगवान् सूर्यदेव अपने रथमें एवं चन्द्रदेव अपने

हरिणवाहनमें आसीन हुए कल्पप्रसूनोंकी वर्षा कर रहे हैं। परमाह्लादित विबुध–वृन्द स्तवपाठ, सुमनोहर वाद्यवादन कर रहे हैं । पू. गुरुदेवको स्पष्ट दिख रहा था – आकाशपथ अमर, किन्नर, विद्याधर एवं गन्धर्वोंसे भरा है ।

अब तो पू. गुरुदेवको ठाकुरके चिन्मयावेश पर किञ्चित् भी सन्देह नहीं रहा था । सहसा एक और विचित्र भगवत्प्रेरित घटना घटी । जब यह रासलीला हो ही रही थी, पूरी ग्रीष्म ऋतु थी । रवि सांध्य गगनकी ओर बढ़ रहा था । अचानक ही एक उमड़े मेघने रविको चतुर्दिक् आच्छादित कर लिया। और वह मेघ इस प्रकार बरसने लगा मानो ब्रजमें पावसका पदार्पण हो गया हो । वर्षाकी फुहारोंने ग्रीष्ममें तपते लीलादर्शन करते दर्शकोंको और मण्डलीके सभी पात्रोंको, साथ–ही–साथ सारे वातावरणको भी इस प्रकार भिगोया कि सभी आनन्दित हो उठे । वायुमें तप्तताके स्थान पर शीतलता संचारित हो उठी । इस प्रकार वातावरणको रमणीय बनाता मेघ कुछ ही क्षणोंमें गगनमें स्थित होगया और उसपर अतिशय सुन्दर इन्द्रचाप जगमगा उठा । वातावरण ऐसा शीतल एवं सौन्दर्यसम्पन्न बन गया कि ठाकुर दूसरे लीलाक्रमको छोड़कर अपने सखाओंको इन्द्रचापका सौन्दर्य वर्णन कर–करके सुनाने लगा। सखा बने ब्रजवासी बालक तो जहाँ अपने ठाकुरसे इन्द्रचापकी शोभाका वर्णन सुन रहे थे, वहीं पू.गुरुदेवकी दृष्टि ठाकुरके स्वयंके सौन्दर्यपर उलझी थी । उन्हें ऐसा ठीक अनुभव हो रहा था कि मेरे प्राणवल्लभके ही अंग–प्रत्यंगसे झरती अंगसौरभको लिये बयार चतुर्दिक् भ्रमण कर रही है। वह कभी तो चतुर्दिक् फैले कमलदलोंको प्रस्फुटित कर दे रही है, और कभी संकुचित। उनके अरुणवर्ण अधरोंसे झर रही है चिन्मय अधररस–सुधाधारा। दिव्य दंतपंक्ति ऐसी दीप्ति प्रकट कर रही है, मानो कुन्दपुष्पको उस दिव्य अधररस–सुधाधारामें सुस्नात कराके इन्द्रवज्रकी विद्युन्मयी किरणोंसे समलंकृत कर, दो बिम्ब फलोंके मध्य सुस्थापित कर दिया गया हो। मन्द मृदु हास–छटा तो मानो आनन्दसागर ही हो, जो चरम सीमातक उमड़ा प्रतीत हो रहा है। उन्नत विशाल कंधोंकी शोभापर तो सर्वस्व ही बलिहार है। विकसित कमल–जैसी हथेली, कमलदल–जैसी नखश्रेणी चित्तको चुरा रही है। नील कलेवरपर पीताभ अम्बर दामिनीसमन्वित सघन घटाकी शोभाको पराजित कर रहा है। पीत दुकूलके सम्मुख सुवर्ण तो सर्वथा रूपहीन है । अब पंकजकोशकी शोभाको पूर्णतया तिरस्कृत करनेवाले दुख–द्वन्द्वहरणशील ललित त्रिभंगी धारण किये

चरणोंकी ओर तो देखो ! जय हो !! इस मयूरमुकुटीके ध्वज, वज्र, गदा, यव, कमल आदि चिह्नोंसे चिह्नित . चरणतलकी जय हो ! जिनसे स्वर्मन्दाकिनीकी त्रितापनाशिनी, शापविमोचिनी, पातकविदारिणी धारा निर्गत हुई, जिन चरणोंकी शेष-सनकादि वन्दना करते हैं, जो श्रुति-सरस्वती और देवर्षिके लिये घन आनन्दस्रोत हैं, जो अज-महेशके ध्यान-धन हैं, उन मेरे परम प्राणपतिके चरणोंकी जय हो !!

पूज्य गुरुदेव अपनी इष्टमूर्तिको प्रत्यक्ष अपने सम्मुख देख पुलकित थे। वे मन-ही-मन सोच रहे थे कि इस ठाकुरके सौन्दर्यमें कितनी मादकता भरी है । ऐसी मादकता जो मन, प्राण एवं इन्द्रियोंतकको विमोहित कर दे । अति आश्चर्य ही तो है कि मेरे प्राणपतिके मुझे प्रत्यक्ष दर्शन होते हुए भी, उनकी रूपसुधामें मेरे नेत्रोंके नित्य निमग्न रहनेपर भी मेरा चित्त न जाने क्यों हाहाकार कर उठता है कि 'हाय ! मेरे प्राणवल्लभके मुझे दर्शन कब होंगे ?'

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा इन भावोंमें गहरे डूब रहे थे कि उनके ध्यानको अचानक ही हटाया एक दुष्ट कपिदलने जो अप्रत्याशित ही गोचारण-लीलाका उपकरण बनने आ धमका था इस बगीचेमें। अकस्मात् ही कूदते-फाँदते कपिदलने जो दर्शकगणों और रासलीलावाले ब्रजवासियोंकी उपस्थितिसे सर्वथा निर्भय और निश्शंक था, अपना आसन जमा लिया उन्हीं आम्र, लीची, एवं अमरूद वृक्षोंके ऊपर जिनके नीचे मैदानमें रासलीलावालोंके द्वारा वनचारणलीला सम्पन्न हो रही थी। इधर तो वातावरणको अस्त-व्यस्त करते बन्दर वृक्षोंकी डालोंपर कूद-फाँद रहे थे, उधर ब्रजवासी बालकोंको भी उत्पात सूझ गया। वन-चारण-लीला हो ही रही थी अतः धेनु-नियंत्रणके लिये यह श्रीकृष्णकी सखा-मण्डली अपने हाथोंमें मोटे-मोटे लकुट तो लिये ही थी। इसने बन्दरोंपर धावा बोल दिया। छोटे-छोटे अल्प वयके बालसखा तो इन कपियोंकी लम्बी पूँछें जो नीचे लटक रही थीं, अपने हाथोंसे पकड़कर खींचने लगे । कुछ-एक क्षण तो दोनों दलोंमें जमकर युद्धका-सा खेल हुआ। पूँछ पकड़कर लटकते छोटे बालकोंको काटने कपिदल जहाँ झपटा, वहीं बड़े-बड़े लकुट सम्हाले युवक ब्रजवासी समाजी उनपर लकुटोंसे प्रहार करते हुए पिल पड़े । इस कपिदलसे हुए युद्धके कारण एक बार तो वातावरण भयग्रस्त हो उठा, परन्तु कुछ ही क्षणोंमें कपिदलके पराजित होकर हट जाने एवं दूसरे वृक्षोंकी ऊँची डालोंमें आसीन होनेसे बनलीला परम सरस और स्वाभाविक हो

उठी । यह लीला चल ही रही थी कि ठाकुर बना घनश्याम उस अमरूद वृक्षपर चढ गया, जिसके ठीक नीचे पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा समासीन हुए लीला देख रहे थे। ठाकुरको अमरूद वृक्षपर चढा पाकर ठाकुरकी बालसखामण्डली भी बन्दरोंके समान उछल-उछलकर उसके आसपासकी डालियोंपर समासीन होगयी।

पू.गुरुदेवका तो दृश्य ही दूसरा हो रहा था। वे तो ठाकुर-वेषधारी घनश्यामके स्थानपर अभिनव कान्ति प्रसरित करते अपने प्राण-प्रियतमको ही वृक्षपर आसीन पा रहे थे। उनके हृदय एवं मन तो यह देखकर परम शीतल हो रहे थे कि "अहा ! मेरे प्राणपतिके परम मनोहर दृगोंमें कैसी समाकर्षक दीर्घता है ! अरुण प्रभासे रंजित वे अपनी बंकिम रसीली चितवनसे कैसी प्रीतिवर्षा कर रहे हैं ! उनके वक्षस्थलका सुमधुर विस्तार कितना समाकर्षक है ! उनके मध्यदेशमें सिंहशावककी कृशता कितनी कमनीय लग रही है ! अहा ! एक अद्भुत अनिर्वचनीय सुधास्रावी सौन्दर्यराशिसे जगमगा रहा है मेरे प्राणपतिका अणु-अणु, रोम-रोम ! " पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके चित्तका अणु-अणु प्लावित हो रहा है, इस सौन्दर्यपूरमें । वे बह चलते हैं, इस प्रवाहमें और डूबने लगते हैं उन श्यामल लहरोंमें ।

इधर तो पू.श्रीराधाबाबा अपने प्रियतम प्राणवल्लभके रूपसागरके अतल-तलमें निमज्जन कर रहे थे, उधर लीला-महाशक्ति योगमाया-नियंत्रित बुद्धिवृत्तिने ठाकुर घनश्यामके मनमें एक अतिशय चंचल क्रिया करनेकी आतुरताका निर्माण कर दिया। उसकी बुद्धिवृत्ति बारबार उसे प्रेरित कर रही थी कि" रे ब्रजवासी ठाकुर ! तू तो सर्वथा अमर्यादित स्वरूपभूत परमानन्द रस-वितरणके लिये ही तो ग्राम-ग्राम, नगर-नगर भटक रहा है। तू गोरखपुर आया ही है इस नीचे-बैठे सन्यासीको परमानन्द रसास्वादन करानेके लिये। यह मात्र ऊपरसे ही मायावादी अति मर्यादित-संन्यासीका वेष ढो रहा है, भीतरसे तो यह लोक-वेदकी सभी श्रृंखलाओंको तोड़े तुम्हारे विशुद्ध प्रेम-रसका दान लेने प्रस्तुत बैठा है। देखो ! देखो !! इसके हृदयका चित्र तुम्हारे सम्मुख स्पष्ट खोलकर रख देती हूँ। अरे भाई ! ब्रजके अतिरिक्त अन्य सभी लीलाओंमें तो ऐश्वर्य ही तुम्हें आवृत किये रहता है और तुम्हारे भक्त भी उसीकी माँग लिये हाथ जोड़े तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं, परन्तु यह राधाबाबा तो तुम्हारा अपना निजजन है। सम्भ्रमरहित विशुद्ध रसका आस्वादन इसे तुम्हारे अतिरिक्त

कौन करावेगा ? यहाँ तो तुम लीला कर रहे हो – गोपीहृदय इस साधुवेष–धारीके प्राणपति प्राणवल्लभकी। ऐसा बानक अन्यंत्र कहाँ ? वाञ्छाकल्पतरो ! इसके मनोरथको पूर्ण करो। रस देकर, रस आस्वादन कर इस राधाबाबा बनी गोपसुन्दरीको प्रीति–पयोनिधिमें पूर्णतया डुबादो ठाकुर !

ठाकुर–वेषधारी घनश्यामके अधरोंपर मन्द मुसकान छा गयी। उसने लीलाशक्तिकी इस प्रार्थनाका अनुमोदन ही किया।

मन में यहै विचार करत हरि, ब्रज घर–घर सब ठाऊँ ।
ब्रज में जनम लियौ सुख कारन, सब कहँ रस बरसाऊँ।।
प्रियतम रूप गोपि मोहि जानैं इनसौं मिलि सुखभोग।
मन ही मन प्रभु कहत प्रेमसौं ये मेरे ब्रजलोग।।

ठाकुर घनश्यामने एक विचित्र लीला की । ठीक अपनी अन्तर् – उद्भूत स्वतःप्रेरणासे उसने पू.गुरुदेवके मानस–संकल्पको पूर्ण करते हुए एक अमरूद(अमृतफल) उस महाभाग्यवान् वृक्षसे तोड़ा, उसे आधा खाया और शेष पू. राधाबाबाकी गोदमें फैंक दिया। उसने इतना ही नहीं किया,नीचे उतरकर अतिशय प्रार्थनाका नाटक करते हुए उसने उस अमरूद फलको श्रीगुरुदेवसे वापस माँगा और तब हँसते हुए उनके मुखमें उस उच्छिष्ट अमरूदको भर दिया। और तब श्रीराधाबाबाके मुखसे लगे उच्छिष्ट अमरूदको स्वयं खा गया।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा तो एकदम स्तंभित रह गये। उनके मुखमें जैसे ही वह अमरूद गया, उन्हें लगा जैसे संविन्मय महाभाव–रससागर उमड़कर उनके मुखद्वारसे प्रविष्ट हो उन्हें अपने अतलतलमें विलीन कर लेनेको उमड़ उठा हो। वे उस विचित्र स्वादकी अनुभूतिमें इतने भरे थे कि उन्हें बाह्य होश ही नहीं था। वे प्राकृत जगत्के ब्रजवासी बालकों द्वारा अभिनीत कोई रासमण्डली देख ही नहीं रहे थे । वे तो अनवरत दस वर्षोंसे अपने हृदयपटलपर विजड़ित अपनी इष्टमूर्तिको ही रासाभिनय करता देख रहे थे । सत्यतः स्थिति यही थी कि उनके सामनेसे तो दृश्यरूपा वह अविद्या माया जिससे सचराचर अखिल विश्व – एक कीटसे लेकर पितामह वेदगर्भ तक सब विमोहित हो रहे हैं, सर्वथा सर्वांशमें विलुप्त हो गयी थी। उस निस्तरण–असंभव मायाके स्थानपर उनके सामने तो स्वयं साक्षात् मायाधिपति मुसकान बिखेरते खड़े थे । जहाँ तक मायाराज्य है , वहीं तक उच्छिष्ट और शिष्टका भेद रहता है । जहाँ माया है ही नहीं ,वहाँ तो वही–वही है । कोई उच्छिष्ट है ही नहीं ।

पू.गुरुदेवने किसका उच्छिष्ट ग्रहण किया ? उन्होंने उसका उच्छिष्ट भक्षण किया जिसके प्रत्येक रोमकूपमें – जैसे आकाशमें वायुसंचरित क्षुद्र असंख्य ब्रह्माण्ड एक साथ घूमते रहते हैं; जिनका अन्त स्वर्गादि–लोकाधिपति ब्रह्मा, इन्द्र प्रभृति नहीं जानते, नहीं जान सकते; जो इतने अनन्त हैं कि अपना अन्त स्वयं ही नहीं जानते; जिनके स्वरूपका साक्षात् वर्णन श्रुतियाँ नहीं कर सकतीं; स्वरूपसे अतिरिक्त सब वस्तुओंका निषेध करते–करते कि वह न स्थूल है, न अणु है; न क्षुद्र है, न विशाल है; न अरुण है, न द्रव है; न छाया है, न तम है; न वायु है, न आकाश है; न संग है, न रस है; न गन्ध है, न नेत्र है, न कर्ण है, न वाणी है, न मन है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न माप है; उसमें न अन्तर है, न बाहर है – इस प्रकार निरसन करते–करते श्रुतियाँ जिनमें जाकर समाप्त हो जाती हैं , अपनी सत्ता समाप्त कर सफल हो जाती हैं; (बृहदारण्यक३।८।८)जब धर्म–प्रतिपादक श्रुतियाँ ही जिसमें विलीन होजाती हैं, वहाँ मात्र वही धर्म रहता है । उससे पृथक् न धर्म रहता है न अधर्म ।

पू.गुरुदेवने उन परमपुरुष पुरुषोत्तमका उच्छिष्ट खाया, जो विश्वका संकल्प करते हैं ; जो विश्वके आदिमें, मध्यमें, अन्तमें स्थित हैं; जो प्रकृति पुरुषके स्वामी हैं; जो विश्वका सृजन करके जीवके साथ ही उसमें प्रविष्ट हो गये हैं; जिन्होंने जीव–भोगायतन शरीरसमूहोंकी रचना की है; जो इन शरीरोंका नियंत्रण करते हैं; जिन्हें प्राप्तकर जीव – जैसे सुषुप्तिमें निमग्न पुरुष अपने शरीरका अनुसंधान छोड़ देता है, उसी प्रकार मायापाशसे मुक्त हो जाता है; जो नित्य अच्युत स्वरूपमें अवस्थित हैं; जिन्हें माया लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर सकती; जो सर्वथा विशुद्ध हैं; जो अभयप्रद हैं; जिनका निरन्तर चिन्तन ही जीवका एकमात्र कर्तव्य है। श्रीमद्भा०(१०।८७।४१) फिर सर्वथा विशुद्धमें अशुद्ध प्रवेश ही कैसे करेगा ? उसका तो उच्छिष्ट भी वही, मात्र वही होगा! जिसमें भय है ही नहीं, हो ही नहीं सकता, वहाँ भला निषेध कैसे होगा ? पू. गुरुदेवने उनका उच्छिष्ट भक्षण किया जो नराकृति ब्रह्म, प्रकृति–पुरुषके स्वामी पुरुषोत्तम ही हैं । उनका सब कुछ उत्तम–ही–उत्तम है, गर्हित कहीं कुछ भी नहीं ।

वास्तवमें पू.गुरुदेवकी यह चेष्टा उच्छिष्ट–भक्षणरूप अपराधमें क्या परिगणित हो सकती है ? अपराध तो वहाँ हो, जहाँ उच्छिष्ट देनेवाला कोई

अल्प हो, शरीरधारी हो । जहाँ विशुद्ध चैतन्य परमात्मा ही दिख रहा हो, वहाँ परमात्माके प्रसाद-भक्षणमें कैसे निषेध संभव है ? जहाँ कोई स्वादवृत्ति, लोलुपता होती है, वहीं अधर्म, निषेध अथवा पाप होता है ।

नान्यद् भगवतः किंचिद् भाव्यं सदसदात्मकम्

।।श्रीमद्भा०२।६।३२।।

—भाव या अभाव, कार्य या कारणरूपमें जहाँ कोई भी वस्तु जिन्हें श्रीकृष्णसे भिन्न दिखती ही नहीं, उन पू.गुरुदेवके लिये कब, कहाँ, किसकी, कौनसी वस्तु भक्ष्य अथवा अभक्ष्य मानी जायगी ? तब फिर ये अधरामृतसना अमरूदका दान क्या था ? वह तो मधुर रसवितरणकी मात्र एक प्रकृष्ट प्रक्रिया थी ! वह थी मधुर रसास्वादनकी एक पवित्रतम प्रणाली, प्रेम मनोरथपूर्तिकी एक मधुर मनोहर सुन्दर योजना, किशोरलीलाविहारी श्रीकृष्णचन्द्रके किशोरावेशकी अप्रतिम रसदानमयी मात्र झाँकी ! इस झाँकी की जय हो ! जय हो !! नित्य निरन्तर जय हो !!!

हाँ, श्रीजयदयालजी गोयन्दका-जैसे लोक-संग्रही पुरुष यह कह सकते हैं कि पू. श्रीराधाबाबाको विधि-निषेधकी वेदशास्त्रसम्मत मर्यादाका उल्लंघन नहीं करना चाहिये था। परन्तु विधि-निषेध तो उनके लिये है जिन्हें जगत्, देह, उचित-अनुचित, धर्म-अधर्म दीख रहा है । जहाँ जगत् दिखता ही नहीं, ब्रजवासी बालक दिखता ही नहीं, अमरूद दिखता ही नहीं, उच्छिष्ट वस्तुका मालिन्य अनुभव होता ही नहीं, मात्र छलकता चिन्मय सुधारस ही दिख रहा है, श्रीकृष्णका देह जिस चिन्मय वस्तुसे बना है, वह चिन्मयता ही जिसके लिये उनका अधरामृतरस है, वही तो उनका अंग-प्रत्यंग सब कुछ है, तब श्रीकृष्णका आस्वादन चाहे स्वाादेन्द्रियसे हो, अथवा नेत्रेन्द्रियसे हो, वाणीरूप गुणगानसे हो, चाहे स्पर्शेन्द्रियसे हो, अथवा किसी कर्मेन्द्रियसे हो, भले ही किसी कामेन्द्रियसे भी क्यों न हो, है तो वह श्रीकृष्णका ही चिन्मय रसास्वादन मात्र। और श्रीकृष्ण जो सब शास्त्र, वेद, धर्म, तत्व यहाँतक कि ब्रह्मकी भी प्रतिष्ठा हैं, किसी भी अवस्थामें, रूपमें, यदि ग्रहण किये जाते हैं, तो क्या कोई भी धर्म, वेद, शास्त्र उन्हें निषिद्ध कर सकता है ? कदापि नहीं ! हाँ, जो श्रीकृष्णको ब्रह्मकी प्रतिष्ठा न मानकर मात्र मायोपाधिक अवतरण मानते हैं, उनकी ही कुबुद्धि ऐसे कुतर्क भले ही स्थापित करे ।

जब श्रीकृष्णमें जड़-अविद्यात्मक देह है ही नहीं, मांस, रक्त, थूक,

कफ, लार संभव ही नहीं, फिर विशुद्ध चिन्मयता चाहे अधर-जिह्वाके संस्पर्शसे प्रकट हो रही हो, निषिद्ध कैसे होगी ?

यहाँ यह कहनेमें मुझे सर्वथा संकोच नहीं है कि श्रीपोद्दार महाराज(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) और पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा भगवद्भक्तिरसके मूर्तिमान विग्रह थे। वे तुरीय प्रेमरसमें आपाततः पगे-डूबे थे। उनके दृश्य -पटलपर भगवान् श्रीकृष्णका मन्मथ-मन्मथ स्वरूप इतना घनरूपमें भरा था कि उन्हें उनके सिवा अन्य कुछ दिखता ही नहीं था। उन्हें न ही अन्य सुनाई पड़ता था, न ही उनकी मन-बुद्धिके द्वारा अन्य कुछ भी सत्यासत्य निर्णय ही होता था। जिसका अन्तःकरण इतना रससिक्त हो कि उसके हृदयसे समग्र प्रपंच ही शशकके श्रृंगकी तरह विलुप्त हो जाय, उसका श्रीकृष्णके सिवाय अन्य कौनसा धर्म, कौनसा मर्यादापालन और कौनसा विधि-निषेध अथवा पाप-पुण्य शेष रहता है ?

जिसको ज्ञान ही नहीं है कि कब रात होती है और कब दिवस, कब जाग्रति आती है और कब सुषुप्ति ; जिसके चित्तमेंसे श्रीकृष्ण स्वप्नकालमें भी नहीं हटते, जिसके अन्तःकरणमें जगत् प्रवेश ही नहीं कर पाता और निरन्तर अखण्ड प्रिया-प्रियतम राधाकृष्णका रासनृत्य होता रहता है, उनके सामने अब अन्य कैसा विधि-निषेध शेष रहा था ?

इतिहास है – वैष्णवाचार्य श्रीहरिरामव्यासदेव नियमतः प्रतिदिन ही गोविन्ददेवके दर्शनार्थ मन्दिर जाते थे । उनके गोविन्ददेव मात्र मन्दिरमें प्रतिष्ठित जड़ प्रस्तर-प्रतिमा नहीं थे। वे चिन्मय सजीव उनके प्राणपति थे। भावजगत्की परम चिन्मय भूमिको जब कोई महासिद्ध संत संस्पर्श कर लेता है तब प्रतिमा चाहे प्रस्तरखण्डसे निर्मित हो, अथवा काष्ठमें अंकित , वह जीवन्त होकर व्यवहार करने लगती है । वह हँसती है, खेलती है, बोलती है और खाती-पीती भी है । मीराके गिरिधरगोपाल मीरासे बोलते थे। वल्लभाचार्यके श्रीनाथजी खाते थे, खेलते थे, गोविन्दस्वामीको कंकड़ी मारकर भागकर मन्दिरमें छिप गये थे । हरिरामजीको उनके गोविन्द मूर्तिमें तो दिखते ही थे, सम्पूर्ण विश्वमें भी प्रत्यक्ष वे-ही-वे भरे दृष्टिगोचर होते थे । उनका अखण्ड नित्यका नियम था कि वे गोविन्दजीकी राजभोगकी आरतीके दर्शन करते और तब अपने आराध्यके महाप्रसादका कण लेकर घर लौटते । लीलामय गोविन्दकी बलिहारी है ! वे अपने भक्तकी सच्ची निष्ठा और उसकी चिन्मय अनुभूतिको

जाँचने-परखने और उसके रसका आस्वादन लेनेमें अतिशय पटु हैं ।

श्रीव्यासदेवजीको आज अपने नित्योपासनाके क्रममें इतना रस आया कि अतिकाल होगया। उपासनासे आँख खुली, बाह्यवृत्ति हुई तो पाया राजभोगका समय तो व्यतीत ही हो चुका है। दौड़े-दौड़े मन्दिर गये, तबतक मन्दिरके पट बन्द हो चुके थे। आज तो ऐसा व्यवधान हुआ कि न तो इष्टदेवके दर्शन ही हुए और न ही भगवत्प्रसादका कण ही प्राप्त हुआ। विरहमें ध्यानावेश तो बढ़ जाता ही है । विरहातिरेकमें पार्थिव वृन्दावन चिन्मय वृन्दाकानन हो गया। गोविन्ददेवके मन्दिरके पुजारीगण सब दिखने ही विलुप्त हो गये । उनके स्थानपर थीं यशोदामैया, और उनका दासीवर्ग– गोपीसमूह । उनकी भावधारामें चिन्मय ब्रजभूमिकी चिन्मय लीला प्रकट हो गयी । जड़-मायाजगत् पूर्णतया विलुप्त ही हो गया । लीलाविहारीकी जय हो ! वे स्वयं भी तो प्रेम-भाव देखकर शबरीके जूठे बेर खाते ही हैं और चाण्डालिनी फल-विक्रयिणीसे उसकी गोदमें आलिंगित हो, अपने कपोलोंपर उसका वात्सल्यभरा प्रीतिचिह्न –चुम्बन अंकित कराके अपनी लघु हथेलियोंमें उससे फल ले आते हैं। प्रेमको जाति-पाँति, वेद-शास्त्र, आचार-विचार, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्यसे सर्वोपरि सिद्ध करनेमें उन्हें परम आनन्द जो आता है ! तत्क्षण ही उन्होंने अपनी लीलासंघटनकर्त्री योगमायाको निर्देश दे दिया, और उसे भला लीला संघटित करनेमें कितने क्षण लगते हैं ! तत्क्षण ही रंगमंचका निर्माण होगया। योगमाया-महाशक्ति एक डोमिन बनकर हाथमें गोविन्दके राजभोगके प्रसादकणको अपनी टोकरीमें लिये श्रीहरिरामव्यासजीको सामने ही आती दिखाई पड़ी। श्रीहरिरामव्यासजीको वह प्राकृतलोककी मलिन मलमूत्र स्वच्छ करनेवाली डोमिन दिखी नहीं,उन्हें तो चिन्मय वृन्दावनधामकी नन्दसदनमें स्वच्छताकर्म करनेवाली गोपी ही वहाँ दिख रही थी। उनकी चिन्मय दृष्टिमें मलिन प्राकृत जगत् तो था ही नहीं । उन्होंने तत्क्षण ही उसकी टोकरीमेंसे सर्वथा श्रद्धाभावनासे भरकर एक पकौड़ी उठाई और उसे अपने मस्तकसे लगाली। आज ही तो वे धन्यभाग्य, कृतकृत्य हुए थे। उनके लिये वह पकौड़ी प्राकृत भोज्यपदार्थ थी ही नहीं, साथ ही जिसकी डलियासे वह उठायी गयी थी, वह नारी भी उन्हें प्राकृत मल-मूत्र स्वच्छ करनेवाली कोई मेहतरानी नहीं दृष्टिगोचर हुई थी । उनका दृश्य ही प्राकृत दृश्य नहीं था। उन्हें तो वृन्दावनकी, नन्दभवनकी किसी दासीसे चिन्मय भगवत्प्रसाद मिला था, जिसे उन्होंने अतिशय श्रद्धाभावसे सिरपर चढाकर

ग्रहण किया था और परम कृतकृत्यता अनुभव की थी।

इधर वृन्दावनके सम्पूर्ण वातावरणमें ही उनकी इस क्रियासे एक प्रकारका पूरा हड़कम्प ही मच गया था। हरिरामव्यासजी जैसे महापण्डित शास्त्रविद् ब्राह्मणने भंगिनकी छुई-हुई पकौड़ी खाई ! सारा समाज उनकी भर्त्सना करनेको उद्यत हो गया। परन्तु उन्हें उसकी कहाँ परवाह थी ? वे तो मुक्तण्ठसे उसका उद्घोष करते हुए कहने लगेः–

ब्यासहि ब्राह्मण मत कहौ, हरिदासनिकौ दास।
बृन्दाबनके डोमकी जूँठन खाई ब्यास।।
ब्यास मिठाई बिप्रकी तामैं लागौ आगि।
बृन्दाबनके स्वपचकी जूठन खावैं माँगि ।।

यहाँ यह ध्यानमें रखनेकी बात है – जिस वृन्दावन और उसके स्वपचकी बात व्यासजी कह रहे हैं, उस वृन्दावनधामका दर्शन तो किसी महापुण्यवान्को अतिशय महत्कृपासे दिव्यातिदिव्य सच्चिन्मय नेत्र पाकर ही होता है, और यदि वह महाभाग्यवान् उस दृश्यके अनुभवको वर्णन करनेकी भगवत्प्रदत्त शक्ति पा जावे तो वह यही कह सकता है कि वह कोई प्राकृत देश नहीं,सच्चिदानन्द -सुधारससरोवरका विलक्षण अरविन्द है, जिसके सौरभका अपहरण करके कृतार्थ होनेका अवसर आजतक किसी भी अनिलको नहीं मिल पाया है, जिसका आघ्राण मधुगन्धलुब्ध किसी भी भ्रमरने आजतक नहीं किया है, किसी जलभरे सरोवरने आजतक जिसे प्रस्फुटित करनेकी सामर्थ्य नहीं पायी है, किसी प्राकृत अथवा दिव्य जलके वक्षस्थलमें खेलनेवाली चञ्चल तरंगें उस पद्मको प्रकम्पित करनेका कभी भी गर्व नहीं कर सकी हैं , ऐसी चमत्कारिक सुन्दरतासे युक्त वह सर्वातिशय सुन्दर चिन्मय प्रदेश है। उस वृन्दावनकी ऐश्वर्यराशि कल्पनातीत है। इस वृन्दावनके प्रत्येक श्वपचका प्रासाद इन्द्रनीलमणिनिर्मित है। यहाँ प्रत्येक ब्रजवासीका सदन मरकतमणिविरचित है। छतें सुवर्णमय हैं, स्तंभोंका निर्माण प्रवालसे हुआ है । द्वारसमूह पद्मरागमणिके हैं । यहाँकी भूमिका कण-कण मणिमय है। सर्वत्र चन्द्रकान्तमणियोंकी दीप-पंक्तियाँ निशामें यहाँ जगमग-जगमग प्रकाश करती हैं। कोटि-कोटि गोवत्स इस ब्रजदेशमें इधर-उधर आनन्दमें उछल रहे हैं ।

और यहाँकी श्वपच गोपी कैसी है जिसकी जूठन श्रीहरिव्यासजी खानेकी लालसा कर रहे हैं ! आइये, उस गोपीके स्वरूपसौन्दर्यका ध्याननेत्रोंसे

किञ्चित् अवलोकन करें। उस श्वपच गोपीके नेत्र ऐसे हैं, मानो दो मुकुलित उत्पल हों। कुन्तलराशि ऐसी लगती है, मानो भ्रमरोंका दल प्रचुर परिमाणमें नव मकरन्दराशिका पानकर, अतिशय मत्त होकर, उड़नेकी सामर्थ्य खोकर निश्चल अवस्थित हो। उस श्वपचकन्याके कपोल इतने सुन्दर हैं, मानो द्रवीभूत किसी मणिसे ही ढ़ले हों,नासापुट ऐसे हैं मानों कालिन्दीके नीरमें परमातिपरम दो सुन्दर बुद्बुद् उठे हों । उस श्वपच गोपीकी चाल इतनी मत्त है, मानो इन्द्रवाहन गजराज ऐरावत झूमकर चल रहा हो। शतकोटि महालक्ष्मी उसकी शोभाको देखकर मुग्ध-विभोर हो जाती हैं । उस वृन्दावनकी श्वपच गोपीके रोम-रोममें जो पावित्र्य भरा है उसके एक कणकी छाया भी न तो चतुरानन वेदगर्भ अपने ब्रह्मलोकमें निरन्तर वेदध्वनि करके ही प्रकट कर सके हैं, न भगवान् चन्द्रशेखर अनन्त कालकी समाधि लगाकर कैलासमें ।

परन्तु यह बात वैष्णवाचार्य हरिरामदासजी जगत्के धर्माभिमानी, दंभपूर्ण अशुचि मानसवाले ,पाण्डित्यके मिथ्या अहंकारसे भरे लोगोंके गले कैसे उतार पाते ? उन्हें तो अनेक जन्म लेनेपर भी वह कृपापूर्ण चिन्मय दृष्टि नहीं मिलनेवाली है , जिसे पाकर हरिरामव्यासाचार्य अपनेको कृतकृत्य एवं धन्य अनुभव कर रहे हैं ।

ऐसी क्रान्तिकारी घटनायें एक नहीं, अनेकों वैष्णवाचार्योंके जीवनमें घटी हैं , जिन्होंने चिन्मयी भगवद्भक्तिसे अपने हृदयको विभूषित किया है ।

महाप्रभु चैतन्यदेवके जीवनकी एक घटना पाठकवृन्द अपने ध्यानमें लायें । बादशाह हुसैनशाहने सुबुद्धिरायको मुसलमानी करुवेका अपना उच्छिष्ट जल पिलाकर उनकी जाति नष्ट कर दी थी । काशीके पण्डितोंसे सुबुद्धिरायने अपनी शुद्धिका उपाय पूछा। सभी पण्डितोंने एक मतसे उन्हें निर्णय दिया कि तप्त घृतपान कर प्राण देना ही इस पातकका प्रायश्चित्त है । श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेवके सम्मुख यह बात किसीने कह दी। उन्होंने सुबुद्धिरायको बुलाया और मात्र भगवन्नाम लेनेका आदेश देते हुए कहाः—

एक नामाभासे तोमार पाप दोष जाबे ।
आर नाम लइते तुमि कृष्णचरण पाइबे।।
आर कृष्ण नाम लइते तोमार कृष्णधामे स्थिति।
महा पातकेर हय एइ प्रायश्चिति।।

एक नामाभास मात्रसे तुम्हारी समग्र पापराशि ही भस्म हो जायगी।

इसके उपरान्त यदि और अधिक नामजप करोगे तो तुम्हें भगवान् श्रीकृष्णके पावनतम चरणोंके दर्शन होंगे । इसके उपरान्त भी यदि तुम भगवन्नाम लेते रहे तो तुम्हें भगवत्सामीप्य प्राप्त होगा और भगवान् श्रीकृष्णके लीलापरिकर होकर तुम्हारी उनके पावन धाममें उनके समीप स्थिति होगी । कोई महापातकी हो तो भी उसके लिये इससे अच्छा दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।

काशीके सर्वशास्त्रनिष्णात पण्डितों तथा महाप्रभु चैतन्यदेवके मतोंमें यह वैभिन्य मात्र इसीलिये है, क्योंकि पण्डित शास्त्रोंके गूढ मर्मको समझ ही नहीं पाये हैं। वे शास्त्रोंके ऊपरी कलेवरसे तो परिचित हैं , परन्तु उन भगवान्के सम्बन्धमें उनकी दृष्टि ही नहीं है , जो सर्वशास्त्रोंके सार-स्वरूप हैं। भगवान् और भगवन्नामकी महिमा उन्हें ज्ञात ही नहीं है ।

काशीके पण्डितोंको तो यह भगवद्भक्ति-परायण कर्म घोर पाप ही प्रतीत हुआ होगा, जब महाप्रभु चैतन्यदेवके अभिन्न-विग्रह श्रीअद्वैताचार्यजीने अपने पिताके श्राद्धके समय श्राद्धपात्र भगवन्नामपरायण भक्त यवन हरिदासको देनेका निश्चय किया था। काशीके पण्डितों और भक्तशिरोमणि अद्वैताचार्यजीका मतैक्य संभव ही नहीं है क्योंकि काशीके पण्डित यवनके घर जन्म लेने मात्रसे सन्त हरिदासजीको निकृष्ट अस्पृश्य मानते हैं और श्रीअद्वैताचार्यजीकी मान्यता यह है कि हरिदास-जैसे एक भगवद्भक्तको भोजन करानेसे कोटि-कोटि ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे भी अधिक पुण्यलाभ होता है ।

अद्वैतमतावलम्बी, महापण्डित श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य एक नैष्ठिक ब्राह्मण थे। वे वैदिक रीति-नीतिके कट्टर समर्थक थे एवं शास्त्रोंमें उल्लिखित विधि -निषेधका अतिशय श्रद्धापूर्वक पालन करते थे। महाप्रभुकी कृपासे उन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रीति प्राप्त हुई ।

एक दिवस उनकी परीक्षा लेने महाप्रभु चैतन्यदेव अरुणोदयके पूर्व ही गत रात्रिका बासी, वैष्णवोंका उच्छिष्ट एवं मन्दिरके बाहर फेंका, श्वपचादिसे संस्पर्शित भगवत्प्रसादका भात लेकर पहुँचे। महाप्रभुको निरे प्रभात आया देख सार्वभौम तत्क्षण ही शय्या त्यागकर उठ बैठे। महाप्रभुके प्रसाद देते ही उन्होंने बिना शौच-स्नान किये ही बासी मुख उस प्रसादको ग्रहण कर लिया। वे पद्मपुराणके निम्न श्लोकोंका अतिशय भावपूर्वक उच्चारण कर रहे थे:—

शुष्कं पर्युषितं वापि नीतं वा दूर देशतः ।
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं नात्र कालविचारणा।।

न देशनियमस्तत्र न काल नियमस्तथा ।
प्राप्तमन्नं द्रुतं शिष्टै भोक्तव्यं हरिव्रती ।।

महाप्रसाद शुष्क हो चाहे बहुत दिन पूर्वका पकाया हुआ हो, चाहे वह दूर देशसे लाया हुआ हो, उसे बिना समय-असमयका विचार करते हुए, मिलते ही प्राप्त कर लेना चाहिये। वैष्णवजनोंको भगवान्‌का अन्नप्रसाद प्राप्त होते ही ग्रहण करनेकी भगवदाज्ञा है। इसमें देश-काल, पाप-पुण्यका कोई नियम नहीं।

यह देखकर महाप्रभु चैतन्यदेव अतिशय आनन्दित हुए। वे सर्वभौमको आलिंगनकर नृत्य करने लगे। वे बोले–

आजि कृष्ण प्राप्ति योग्य हैल तोमार मन।
वेद धर्म लाँघि कैले प्रसाद भक्षण।।

'तुमने वेद-धर्म लाँघकर प्रसाद भक्षण किया, तो समझो तुम्हारा मन अब कृष्णप्राप्तिके योग्य हुआ।' रसिकाचार्य श्रीहरिरामव्यासदेवाचार्यजीका एक पद यहाँ उल्लिखित कर इस प्रसंगको आगे बढ़ाता हूँ ।

रसिक अनन्य हमारी जाति ।
कुलदेवी राधा , बरसानौ खैरो, ब्रजवासिन सौं पाँति।
गोत गोपाल ,जनेऊ माला, शिखा शिखण्डि हरिमंदिर भाल।
हरिगुनगान बेदधुनि सुनियत, मूँज पखावज ,कुश करताल।।
साखा जमुना, हरिलीला षट्‌कर्म, प्रसाद प्राण, धन रास ।
सेवा विधि, निषेध जड़ संगति, वृत्ति सदा वृन्दावन बास।।
सुमृति भागवत, कृष्णनाम संध्या-तर्पन गायत्रीजाप।
बंशी ऋषि,जजमान कल्पतरु, ब्यास न देत असीस-सराप।।

अर्थात् इन प्रेमी कृष्णभक्तोंकी जाति ही अनन्य रसिकता है ! इनकी कुलदेवी राधा है और इनका खैरो (मठ) बरसाना ग्राम है तथा ब्रजवासियोंकी पंगत ही इनकी भोजनोपलब्धिका साधन है। इनका गोत्र गोपाल है, और इनकी पहनी तुलसीकी कण्ठी ही इनका यज्ञोपवीत है। हरिगुणगान ही इनके लिये वेद-ध्वनिश्रवण है, इनके पास मूँज एवं कुशके स्थानपर पखावज और करताल हैं। इनकी शाखा यमुना है । इनके षट्‌कर्म हरिलीलादर्शन और भगवत्प्रसाद इनका प्राण है, इनका धन रासलीलादर्शन है । विधि इनके लिये भगवत्सेवा है और जड़ देहाध्यासी लोगोंकी संगति निषेध है। इनकी वृत्ति सदा वृन्दावनवास करना ही है । इनकी स्मृति भागवत है और भगवन्नामजप

ही इनका संध्यातर्पण-गायत्रीजप है । वंशी इनकी आदर्श ऋषि है और कल्पतरु यजमान है । व्यासजी कहते हैं कि ये वैष्णव न तो किसीको श्राप देते हैं और न ही वरदान देते हैं ।

श्रीहरिरामव्यासदेवजीका भगवत्प्रसादके सम्बन्धमें भी एक बड़ा ही मार्मिक पद है–

हमारो जीवन-मूरि प्रसाद।
अतुलित महिमा कहत भागवत मेटत सब प्रतिवाद।।
जो षट्मास व्रतनके कीन्हें, एक सीथके स्वाद ।
दर्शन पावत साथ खात मुख परसत हरत विषाद।।
लेत-देत जो करत अनादर सो नर अधम गवाद ।
श्रीगुरु सुकुल प्रसाद व्यास यह रस पायो अनहाद ।

श्रीगुरुसुकुलप्रसादके शिष्य व्यासदेवजी कहते हैं कि भगवत्प्रसाद ही हमारे जीवनका सार है। भगवत्प्रसादकी महिमा अतुलित है। श्रीमद्भागवत इस सम्बन्धमें प्रमाण है; वह सब कुतार्किकोंका प्रतिवाद करनेमें समर्थ है। छः-छः मासतक अनवरत भले ही व्रत करलो, परन्तु एक कण भगवत्प्रसादके प्राप्त करने मात्रसे ही भगवद्दर्शनकी प्राप्ति हो जाती है। उसके स्पर्शमात्रसे सारे विषाद मिट जाते हैं । जो व्यक्ति भगवत्प्रसाद लेने-देनेमें अनादरका भाव रखते हैं, वे महा अधम और गँवार हैं । श्रीव्यासदेवजीने तो मात्र भगवत्प्रसादकी कृपासे ही असीम रस प्राप्त किया है ।

अन्तमें मुझे इतना ही कहना है – पू. श्रीराधाबाबा और श्रीपोद्दार महाराज दोनों ही उसी वैष्णवताके आदर्श थे, जो महाराजा अम्बरीषसे लेकर अबतक परम भागवतधर्मके रूपमें जानी जाती है एवं अब भी यत्र-तत्र विद्यमान है।

श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकासे मत-वैभिन्न्य

बक(दम्भ) एक वृत्ति होती है। परनिन्दा ही इसका उद्देश्य होता है, और इसके द्वारा यह वृत्ति अहंकार(कंस)को तुष्ट करती रहती है। एक बार तो अति उल्लासपूर्वक यह तीक्ष्णतुण्ड बक नन्दनन्दनको भी अपने चञ्चुपुटोंमें रख लेता है, फिर साधारण मानवकी तो बात ही क्या है ? इस दम्भरूप बकने अपने नीचेकी चौंचको तो पातालमें लगा रखी है और ऊपरकी चञ्चुसे समग्र आकाशको समावृत कर लिया है । देव, दनुज, मानव – समस्त जीवोंके प्राण इस निन्दास्तुतिरूप बक-कर्मसे प्रभावित होते ही रहते हैं। यह बक समस्त जीवोंके प्राण आकर्षण करनेके लिये विशाल संडासी-सरीखा अपना मुख फैलाये कालपुरुषके समान सर्वत्र ही अवस्थित रहता है।

गोरखपुरका साहिबगंज मोहल्ला भी फिर भला इस बकक्रिया – निन्दास्तुतिका अपवादरूप कैसे रह पाता ? श्रीराधाबाबाने रासलीलाके ठाकुरका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण किया – यह बात निन्दारूप धारणकर एक-से-दूसरेके कानोंमें जाने लगी। लोग चाहे स्वयं धर्मका अंशमात्र भी पालन नहीं करते हों, वे दूसरेको तो पूर्ण धर्मावताररूपमेही देखना चाहते हैं। लोग एक-दूसरेसे कहने लगे कि चतुर्थाश्रमी संन्यासी होकर भी राधाबाबा एक ब्रजवासी रास-धारी बालकका उच्छिष्ट ग्रहण करते हैं, यह तो सर्वथा ही अनुचित बात है। ऋषिकेशमें यह बात कुछलोगोंनेश्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाके कानोंमें भी डालनी प्रारम्भ कर दी। जो लोग छिद्रान्वेषी होते हैं उन्हें अपचर्चाके लिए कुछ-न-कुछ साधन तो चाहियें ही। यहाँ श्रीसेठजीके स्वभावके सम्बन्धमें भी दो बातें लिखना परमावश्यक समझ रहा हूँ । पू. गुरुदेव प्रथमतः जब श्रीसेठजीके पास बाँकुड़ा पहुँचे थे तब उनके गीताके विचारोंसे इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने उनके विचारोंकी श्रीमद्भगवद्गीताकी टीकाके प्रकाशनमें लगातार ढाई-तीन वर्षतक अनवरत कार्य किया था। श्रीसेठजीके सम्बन्धमें पू.गुरुदेवकी अपनी उक्ति निम्न है–

वैकुण्ठ(बाँकुड़ा) नामकी नगरी थी, ज्ञानी थे एक वहाँ प्रियतम।
राजा विदेहके सदृश भला, प्रेमी रघुकुलमणिके प्रियतम ।।

आदर्श चरित्रोंके वे थे, जय सीताराम तथा प्रियतम ।
नारायण नाम अधिक उन्नको प्रिय था ऐसा लगता प्रियतम।।
जीवनमें उनके छाया थी उस तुलाधारकी भी प्रियतम ।
वे अतिशय सरल दक्ष पर थे जगके व्यवहारोंमें प्रियतम ।।
देखा था मैंने उनको जब आकाशचारिणी थी प्रियतम ।
होती थी सुनकर फुल्ल सदा प्रवचन पवित्र उनका प्रियतम।।

(पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा रचित चौपदोंसे)

श्रीसेठजी जयदयालजी सचमुच ही महान् विभूति थे। उनमें विश्वकल्याणकी अदम्य भावना थी, परन्तु उनका हृदय गोपीहृदय नहीं था। पू. गुरुदेव अनेक बार यह कहते थे कि महात्मा नन्दरायजी श्रीकृष्णके पिता थे, उनके चरणोंकी धूलि सदा-सर्वदा वन्दनीय है; परन्तु उन्हें श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ रासलीला कर सकते हैं, ऐसा अनुभव अपने जीवनमें कभी भी न हो पाया, न ही हो पायेगा। श्रीसेठजी ब्रह्मज्ञानी होनेके कारण अपनेको पूर्ण समझते थे, अतः अपनेको गोपीभाव एवं रासलीलाका भी मर्मज्ञ मानते थे। गोपीभावपर उनका एक लेख भी 'कल्याण'में प्रकाशित हुआ था जो पुस्तकाकार रूपमें भी छपा था, परन्तु वह गोपीभावका ज्ञानसम्मत आनुमानिक आकलन मात्र ही था। वस्तुतः महाभावराज्यकी गोपीका जो स्वभाव होता है, उसका प्रकाश होना उनके द्वारा संभव था ही नहीं ।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा रासलीलाके ठाकुरका उच्छिष्ट ग्रहण करना श्रीसेठजीको किसी भी प्रकारसे अनुकरणीय और उचित नहीं लगा। वस्तुतः वह सर्वजनके लिये अनुकरणीय था भी नहीं । परन्तु यह तथ्य तो सर्वत्र प्रसारित हो ही गया था कि श्रीराधाबाबा रासके ठाकुरका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करते हैं। रासलीला दर्शन करनेवालोंमें कुछ सच्चे भक्त भी थे। वे अपनी भावुकतावश रासके ठाकुरके प्रति भगवद्भाव रखते थे। उनकी यह भावुकता पूर्ण सच्ची तो नहीं थी, परन्तु वृन्दावनके रसिक वैष्णवोंकी साम्प्रदायिक परम्परा और अनुकृति—नकलके रूपमें ये सभी ठाकुरका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करनेकी चाह अवश्य रखते थे। ये सभी श्रीसेठजीकी अति मर्यादावादी विरोधी-भावना और उनके आक्षेपोंसे पू. राधाबाबाको अपना कवच बनाकर बचना चाहते थे ।

कुछ बकभाव रखनेवाले छिद्रान्वेषी पुरुष भी थे, इन्हें अपचर्चाके लिये

एक अच्छा विषय मिल गया था और ये श्रीसेठजी गोयन्दकाजीको गोरखपुरसे प्रतिदिन ही उलटे–सीधे पत्र लिखते थे और रासलीलाके प्रति बगींचेवालोंकी रुझानको सेठजीके सम्मुख विकृतरूपमें प्रस्तुत करते थे । इनका एक ही उद्देश्य था कि किसी–न–किसी प्रकारसे श्रीसेठजी और श्रीराधाबाबाके मध्य खाई खोदी जाय। श्रीसेठजीने इनलोगोंसे इस बीच पूछा कि क्या तुम्हारे सम्मुख श्रीराधाबाबाने ठाकुरका उच्छिष्ट ग्रहण किया था ? इसका उत्तर उनके पास नहीं था। कारण, श्रीठकुरीबाबूके यहाँ दुपहरीमें हुई वनचारणलीलामें गिने–चुने मात्र भावुक लोग सम्मिलित थे। कामकाजी व्यापारी लोग दुपहरीमें अपने व्यापारिक प्रतिष्ठानोंमें व्यस्त रहते हैं। अतः जो बहुत ही भावुक रास–रसिक लोग थे, वे ही लीलादर्शनार्थ जा पाये थे तथा ऐसे लोगोंको तो अपने रससे तात्पर्य था, इस व्यर्थकी निन्दा–स्तुतिसे वे सर्वथा दूर थे । सेठजीके सम्मुख मात्र अफवाह की ही बातें पहुँची थीं, कोई प्रत्यक्षदर्शी जिम्मेवार व्यक्ति साक्षीके रूपमें यह कहनेको तत्पर नहीं था कि उसके सम्मुख ऐसा हुआ है।

संयोगकी बात है, कि एक दिन कुछ लोगोंने रासके ठाकुरको इस बातके लिये पटा लिया कि वह रात्रिमें लीला सम्पन्न हो चुकनेके पश्चात् जब पू. राधाबाबा एवं बगीचेके लोग विदा हों , उस समय अपना उच्छिष्ट उन्हें प्रसादरूपमें दे। वे इस योजनाके द्वारा साहिबगंजके अनेक प्रतिष्ठित व्यापारियोंको सेठजीके सम्मुख इस उच्छिष्ट–ग्रहणके प्रत्यक्षदर्शी साक्षीके रूपमें प्रस्तुत करना चाहते थे । इन छिद्रान्वेषियोंकी इस दुरभिसन्धिमें कुछ ऐसे सच्चे भावुक व्यक्ति भी सम्मिलित हो गये, जिनका इस निन्दा–स्तुतिसे कुछ भी लेना–देना नहीं था, परन्तु जो इस तथ्यकी पुष्टि करना चाहते थे कि धर्मतः ठाकुरका उच्छिष्ट लेना शास्त्रसम्मत है या नहीं। उनके सामने धर्म एवं शास्त्रानुकूल आचरण करनेवाले मात्र दो ही आदर्श प्रतिमान थे, एक कट्टर वैरागी, पूर्ण त्यागी, संन्यासी श्रीराधाबाबा जो साथ–ही–साथ राधाकृष्णके परमोच्च उपासक भी थे, दूसरे , तैलंग–कुल–भूषण, पूर्ण आचारवान्, परमत्यागी, शास्त्रके मर्मको समझनेवाले, ब्राह्मणवर गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी । श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी भी प्रतिदिन रासलीलादर्शनार्थ गीतावाटिकासे साहिबगंज आया करते थे। ये संस्कृतके सुविज्ञ पण्डित होनेके साथ ही सर्वशास्त्रनिष्णात थे। अतः ये रासरसिक लोग

यही प्रत्यक्ष देखना चाहते थे कि इतने कट्टर–आचारी, उच्चकुल–शील–शास्त्रविधि के निष्णात समर्थक ही यदि ठाकुरका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करते हों, तो फिर अवश्य ही ऐसा करना वैष्णवशास्त्र एवं भागवतधर्म –सम्मत होगा ही, भले ही इसका विरोध सेठजी जयदयालजी करते रहें। इनकी मान्यता थी कि सेठजी आचार–मर्यादाके कठोर पक्षधर हैं, वे वैष्णवताके श्रद्धापक्षको आदृत एवं प्रतिपादित नहीं करते। गोस्वामीजी श्रीचिम्मनलालजी वल्लभकुलके वैष्णव हैं एवं पूर्ण कठोर आचारवान् भी हैं। अतः उन–जैसा आदर्श वैष्णव यदि ठाकुरवेषधारी ब्रजवासी बालकका उच्छिष्ट ग्रहण करता है, तो मर्यादाका पक्ष रखनेवाले सेठजीके विरोधको वे उनका व्यक्तिगत मताग्रह मानकर मात्र एकपक्षीय ही समझेंगे। अस्तु, छिद्रान्वेषी लोगोंकी इस दुरभिसन्धिमें ये भावुक लोग भी सम्मिलित हो गये ।

रासलीला प्रारम्भ हुई। पू.गुरुदेवकी दृष्टि ठाकुर पर पड़ी । पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा देख रहे थे, आज बकासुरके उद्धारकी लीला सम्पन्न होने जा रही है। श्रीकृष्णके साथ उनके अग्रज दाऊभैया भी हैं। पू.गुरुदेव देख रहे हैं कि आज ठाकुरकी लीलासे उनके हृदयका भावसंसार ठीक संयुक्त नहीं हो पा रहा है। आज ठाकुर उनके संकल्पानुसार आचरण नहीं कर रहा है, स्वतंत्र रीतिसे अपने मनकी कर रहा है। पू. गुरुदेवके अपने भावसंसारमें तो ठाकुरको इस समय वनस्थलीकी शोभा निहारतेहुए, हँसते–हँसाते, अपनी वंशीकी मधुर स्वर–लहरीसे वृन्दाकाननको आप्लावित करना चाहिये, परन्तु प्रकटमें रासलीलाका ठाकुर मात्र हियो–हियो करता हुआ अपने बछड़े बने पात्रोंको ही हाँक रहा है, वंशीवादन कर ही नहीं रहा। पू.गुरुदेवके भावसंसारमें तो गोवत्सोंके साथ चलते–चलते ब्रजबालकोंके सम्मुख पहले नवतृणास्तीर्ण वनभूमि आती है, फिर वहाँ एक रमणीय सरोवर व्यक्त होता है। उल्लासमें भरे रामकृष्णकी तथा गोपशिशुओंकी यहाँ प्रथम चेष्टा होती है – अपने–अपने वत्ससमुदायको सरोवरका सुनिर्मल जल पिलाकर तृप्त करना। परन्तु रासलीलाधारी तो अपनी लीलामें सरोवरके स्थान पर यमुनातटपर अपने वत्सोंको ले आये हैं । ये अपने वत्सोंको जल पिला ही नहीं रहे हैं, न स्वयं ही जल पी रहे हैं ।

पू.गुरुदेवके भावसंसारमें तो इतनी दूरसे चलकर आनेके कारण स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रको भी प्यासकी अनुभूति होती है और वे अपने वत्सोंको जल

पिलाकर परितृप्त करनेके उपरान्त स्वयं भी उस सुनिर्मल सरोवरका अति सुमिष्ट जल पान करते हैं, परन्तु उधर प्रकट रासलीलामें ठाकुर पू. गुरुदेवके भावानुसार लीला सम्पन्न करनेकी अपेक्षा समाजियों द्वारा गाये पदोंके अनुसार दूसरे ही प्रकारसे लीला सम्पन्न करता जा रहा है ।

इसीलिये पू.गुरुदेवका आज रासलीलादर्शनमें वैसा भावोद्दीपन नहीं हो रहा है, जैसा विगत दिवसोंमें होता रहा है। सहसा पू. गुरुदेवके भावसंसारके आराध्य श्रीकृष्ण उनके सम्मुख साक्षात् खड़े हो जाते हैं और कह उठते हैं– 'प्राणेश्वरी ! आज यदि इस ठाकुरस्वरूप द्वारा तुझे अपना उच्छिष्ट प्रसाद दिया जाता है, तो तू कदापि मत ग्रहण करना, और न ही उसे किसी औरको भी प्रदान करना, सावधान !'

पू.गुरुदेव अपने इष्टके इस स्पष्ट आदेशको सुन रहे थे। वे देख रहे थे कि अपनी प्रियाको यह आदेश देते हुए उनके प्राणाराध्यके अरुणिम अधरोंपर मृदु हास्यकी छटा भर आयी है। उस स्मितकी ओटसे चिन्मय सुधा–सीकर झर रहे हैं। मुखमण्डलका सौन्दर्य, लावण्य निखर उठा है । पू. गुरुदेव अपने आराध्यकी इस विलक्षण शोभाको सचकित निहार ही रहे थे कि इसी समय उन्हें रासलीलाका बंकासुर बनाहुआ एक पात्र सम्मुख दृष्टिगोचर हुआ। पू. गुरुदेव उसे देखने लगे। वे सोचने लगे – क्या सचमुच ही ये रासमण्डलीवाले मुझसे कोई छल करने जा रहे हैं ? इधर उस विशाल बकाकृति धारण किये रासधारीने अपने विस्तारित चञ्चुपुटोंको सखा बने रासधारी बालकोंकी ओर फैला दिया।

गोपबालकोंकी लीला करनेवाले बालक भागे अपने प्राणसखा ठाकुरकी ओर। इधर ठाकुर अपना वक्तव्य बोल रहा था–' भैयाओ ! देखो ! आकारसे तो यह पक्षी ही लगता है, पर इसकी चेष्टा पक्षी–जैसी सर्वथा नहीं है। यह तो सर्वथा पर्वत–श्रृंग–जैसा प्रतीत हो रहा है।''

गोपसखा श्रीकृष्णको घेरे हैं एवं भीतिसे भरे परस्पर वार्ता कर रहे हैं–'अरे भैया ! यह पक्षी नहीं है, यह अवश्य ही कोई दानव है। यह तो हम सभीको निगल जानेको उत्सुक है । चलो ! कन्नू ! हम सभी भाग चलें ! '

'अरे ! यह क्या ?'– पू.गुरुदेव देख रहे हैं कि ठाकुरवेषधारी बालक अपने सखाओंसे 'भयभीत मत होवो' कहता हुआ बकासुरके निकट चल पड़ता है। पू. गुरुदेव पुनः इस बालकके बाल्यावेशपर मुग्ध होगये। सरल मुग्ध

शिशुकी भंगिमा धारण किये बालक ठाकुर वक्रतुण्ड बकासुरकी ओर अग्रसर हो रहा है। बालक मन्द गतिसे बकके निकट जा रहा है। उसकी चालसे स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है कि उसे बकका किञ्चित् भी भय नहीं , अपितु उसके प्रति उपेक्षा–अवहेलना है ।

पू.गुरुदेवकी वृत्ति पुनः इस लीलाके बाह्य दर्शनको छोड़ अन्य विचारोंमें उलझ गयी। वे सोचने लगे – जब मेरे इष्टदेव ठाकुर ही मूर्तिमान् बकासुरसे किञ्चित् भी भयभीत न होकर, उसकी उपेक्षा, अवहेलना कर रहे हैं, तो मैं लोकनिन्दारूप इस बकसे क्यों भयभीत होऊँ ? मेरे प्रियतम प्राणाराध्य मुझे अतिशय स्नेह करते हैं, अतः भविष्यमें होनेवाले अपवादसे मेरी रक्षा करनेके लिये अपनी सर्वज्ञता प्रकाशित करते हुए मुझे इस ठाकुरका उच्छिष्ट ग्रहण नहीं करनेका प्रेमाग्रह करते हैं। अवश्य ही उन्हें मेरे संन्यासीवेषकी मर्यादाका विचार है। परन्तु अन्ततः उन्होंने इस बकासुरका वध तो किया ही । क्या यह महाबली तीक्ष्णतुण्ड पक्षी मेरे प्राणपति नीलसुन्दरको अपने चञ्चुपुटोंसे आहत करके उदरस्थ कर पाया ? अन्ततः इस बकका विनाश ही तो हुआ ! फिर मैं भयभीत क्यों होऊँ ? जब मैं रासलीला देखने यहाँ उपस्थित ही हूँ तो मुझे संन्यासकी अपेक्षा रासलीलाकी मर्यादाको ही तो प्रमुखता देना चाहिये।

पू. गुरुदेव इन्हीं विचारोंमें खोये रहे और लगभग डेढ–दो घण्टे लीलाका समय व्यतीत होगया। सम्पूर्ण लीला कैसे सम्पन्न हुई, उन्हें कुछ ज्ञान ही नहीं रहा। कब श्रीकृष्ण बकके मुखविवरमें समाये, कब उनके प्राणपति व्रजेन्द्रनन्दनको उगल देनेको वह बाध्य हुआ, कैसे श्रीकृष्ण अक्षतरूपमें उसके कण्ठसे बाहर आये , कब अतिशय रोषमें भरकर पुनः बकने उनपर चञ्चुप्रहार किये, कब बकदैत्यकी दोनों बृहत् चोंचोंको अपने सुकोमलतम नन्हे करपल्लवोंसे बलपूर्वक उन्होंने पकड़ा, और फिर क्षणार्धमें ही मानो वह बकदैत्य ग्रन्थिहीन –एक तृणविशेष हो इस प्रकारका होगया, अनायास ही बीचसे कब उन्होंने उसको चीर दिया– पू.गुरुदेव सब कुछ खुली आँखोंसे देखते हुए भी कुछ भी नहीं देख पाये।

उनके विचारोंका प्रवाह तभी थमा, जब देवगणों द्वारा सहस्र–सहस्र कुसुमोंकी वृष्टि होने लगती है और रासलीलाके समाजी अपने ठाकुरके अंगोंको वनधातुओंसे सुसज्जित करने लगते हैं । इसी उमंगके प्रवाहमें ठकुरीबाबूद्वारा

ठाकुरको थाली भरकर नुक्ती(बुँदिया)का प्रसाद गुलाबके पुष्पोंसे आच्छादितकर भोग लगाया जाता है। ठाकुर उसी थालीमें मुट्ठी भर–भरकर स्वयं भी खाता है और अन्य सखाओंको भी खिलाता है । ब्रजवासी बालकोंके संस्कारोंमें उच्छिष्ट–अनुच्छिष्टका तो विचार रहता ही नहीं है । वे तो उमंगके प्रवाहमें एक–दूसरेके मुखोंमें बूँदी डालनेकी स्पर्धामें जुटे हैं । वहाँ इसे असम्बद्ध और असंगत तो कुछ माना ही नहीं जाता है।

अन्ततः लीलाका पटाक्षेप आरतीके साथ होता है, और लीला सम्पन्न होती है। इसी समय स्वयं ठाकुर उठकर उस बूँदी प्रसादमेंसे दोना भर–भरकर सभी सम्मान्यजनोंको देनेकी योजनानुसार सर्वप्रथम वह प्रसाद पू. राधाबाबाको देने उनके सम्मुख खड़ा हो जाता है। ठाकुर वह उच्छिष्ट प्रसादका दोना राधाबाबाके हाथमें दे देता है और कहता है कि इसे पालें। पू. राधाबाबाके नेत्रोंमें, मुखपर एक साथ किंकर्तव्यविमूढ़ताकी छाया झलमल कर उठती है। वे पुनः विचारमें पड़ जाते हैं । उस दिन अवश्य ही वह अमरूद जो ठाकुरकी दंतपंक्तिसे अर्धचर्वित था, उन्होंने खाया था, परन्तु उस दिवस तो वे सच्चिन्मय महाभाव–रससागरमें सपूर्णतया निमग्न थे , उन्हें बाह्य लोकाचारका ज्ञान ही नहीं था । उस दिवस तो उनका सम्पूर्ण मायादृश्य ही तिरोहित हो गया था, परन्तु आज तो यह स्थिति है नहीं । आज तो वे पूर्णतया जागरूक हैं और उनकी बुद्धि धर्माधर्मका पूर्णतया निर्णय करने में समर्थ है । तब वे आज चतुर्थाश्रमी संन्यासी होकर सारे विश्वमें प्रचलित संन्यासमर्यादाके शास्त्रविहित आचरणको सब जनसमूहके सम्मुख क्यों लाञ्छित करें ? यह जनसमूह तो उनके आचरणको ही अनुकरणीय मानेगा ! और यदि उन्होंने प्रसाद ले लिया तो सभी इस उच्छिष्ट–भक्षणको धर्मसम्मत मान लेंगे। शास्त्रके विधि–निषेधका तो यह सर्वथा उल्लंघन होगा ही। ब्राह्मण संन्यासीको किसी भी व्यक्तिका चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, उच्छिष्ट ग्रहण करना तो शास्त्रमें पूर्णतया वर्जित है ही। परन्तु इस रासलीलाके ठाकुरकी भी कुछ मर्यादा है । समग्र वैष्णव–सम्प्रदायोंकी यह परम्परा है कि ब्रजवासी ब्राह्मण बालक यदि मुकुट धारणकर श्रीकृष्णवेषमें समुपस्थित हो तो उसे प्राणप्रतिष्ठित भगवन्मूर्तिके समान ही आदर देना चाहिये। और उसके उच्छिष्ट प्रसादको भगवत्प्रसादवत् महिमान्वित समझना चाहिये। तब इस प्रसादका एक कण मात्र क्या मैं ग्रहण

करलूँ ? कोई भी व्यक्ति भगवत्प्रसाद कहकर मुझे कुछ भी यदि देता है तो उसका एक कण तो मैं ग्रहण करता ही हूँ ! फिर मैं ब्रजवैष्णवोंकी इस मान्यताका समादर क्यों न करूँ ? जब ठाकुर स्वयं अपने हाथों प्रसाद दे रहा है, तो इसकी मर्यादाकी रक्षा तो होनी ही चाहिये ! इस प्रकार ऊहापोहमें भरे पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा अपने हाथेंमें वह बूँदीका दोना लिये बहुत कालतक खड़े रहे। आसपास खड़े भावुक भक्तों और छिद्रान्वेषी सभी लोगोंकी दृष्टि उनकी क्रियाको देखती–परखती उनपर गड़ी थी। श्रीराधाबाबाके मनमें यह भी आया कि अपनी दो अँगुलियोंके मध्य चुपचाप बिना किसीके देखे बूँदीका एक दाना दबालूँ ! इस दानेको बादमें मैं पालूँगा। इस प्रकार मैं संन्यासी होकर सबकी दृष्टिमें अनुकरणीय आचरणका शास्त्रसम्मत आदर्श भी समुपस्थित कर दूँगा और वैष्णवोंकी मर्यादा भी रह जायगी। परन्तु फिर उन्होंने इसे अपने समक्ष खड़े ठाकुरकी वञ्चना मानकर ठाकुरके वचनोंका ही सम्मान करनेका विचार कर लिया और एक कण प्रसाद लेकर अपने मुखमें रख लिया, शेषांश प्रसादका दोना उन्होंने श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको दे दिया जो स्पर्शास्पर्शका अत्यधिक विचार रखनेवाले थे। श्रीगोस्वामीजीने वह उच्छिष्ट प्रसाद बिना कोई विचार किये मात्र इसीलिये पा लिया, क्योंकि उन्हें वह प्रसाद उनके गुरुतुल्य आदर्श संन्यासी श्रीराधाबाबाने दिया था। अब तो भावुक भक्तोंके साथ–साथ छिद्रान्वेषण कर श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाके कानमें उलटी–सीधी लगानेवाले बक–चरित्र लोगोंकी भी योजना आवश्यकतासे अधिक पूर्ण हो चुकी थी। छिद्रान्वेषी लोगोंको तो अनेकों सम्मान्य प्रतिष्ठित लोग भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षीके रूपमें मिलगये थे, अतः उन्होंने तत्क्षण ही उन सबकी एक नामावली बना डाली जिन्होंने पू. राधाबाबाको उच्छिष्टका कण प्रसाद लेते देखा था और गोस्वामीजी जैसे आदर्शचरित्र व्यंक्तिको भी, जो श्रीसेठजीके परिवारकी भी अनसखड़ी ग्रहण नहीं करते थे एवं गंगाजलमें ही बनी वस्तु स्वीकार करते थे, पूरा उच्छिष्ट दोनाप्रसाद पाते देखा था। इधर भावुक भक्तोंने जब इन दोनोंको प्रसाद लेते देख लिया, तो वे निस्संकोच ठाकुरका प्रसाद निर्भय होकर पाने लगे।

एक छिद्रान्वेषी व्यक्तिका तो इस इधर–उधरकी लगौवनलीलामें उद्देश्य ही यह था कि श्रीसेठजीका–जिन्हें पू. गुरुदेव राधाबाबा सदा पितातुल्य पूर्ण

समादर देते थे और अपनी ब्रह्मज्ञानकी अपरोक्षानुभूति उपलब्धिमें जिन्हें हेतु मानकर साक्षात् भगवान् नारायणतुल्य ही देखते थे – पू. राधाबाबाके प्रति दुर्भाव बन जाय और दोनोंके मध्य न पाटी जा सके वैसी खाई खुद जाय। उसने अपने मन्थरास्वभावका पूर्ण परिचय देते हुए इन सभी तथ्योंको पत्रोंद्वारा इतना विकृतरूपमें सेठजीके सम्मुख प्रस्तुत किया कि सेठजी स्वयं सत्संगका कार्यक्रम छोड़ गोरखपुर चले आये।

श्रीसेठजी शास्त्रीय विधि–निषेधके इतने कट्टर समर्थक थे कि वे उसका अन्य किसी भावनासे किसी भी प्रकार सामंजस्य करना चाहते ही नहीं थे। उन्होंने अपने निजी एवं सार्वजनिक सत्संगोंमें इस मान्यताका पूरा खण्डन किया कि रास अभिनय करनेवाले बालकमें मात्र मुकुट धारण करनेसे श्रीकृष्णावेश होता है। उनका कथन था कि यदि उस बालकमें श्रीकृष्णावेशकी छाया भी थी तो वह लोगोंके सिखाने–पढानेसे अपने ही गीतोपदेशके विरुद्ध आचरण करता हुआ उच्छिष्ट वितरण क्यों करता ? क्या श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् श्रीकृष्णकी वाणी नहीं है और उसमें उन्होंने अपने मुखसे उच्छिष्ट भक्षणको सरासर तमोगुणी नहीं कहा है ? फिर भगवान् स्वयं अपने ही उपदिष्ट सिद्धान्तका स्वयं ही अपने आचरणसे खण्डन कैसे कर सकते हैं ? श्रीराधाबाबा और गोस्वामीजी–जैसे व्यक्तियोंने एक उच्छृंखल आचरण करनेवाले चपल बालकमें किस हेतुसे ऐसी आसक्ति करली। प्रतिदिन उसका नाट्याभिनय देखना और उच्छिष्ट भक्षण करना तो खुला नरकका द्वार है। यह मेरे आजीवनके स्थापित सिद्धान्तोंका मेरे अपने विश्वस्त जनों द्वारा खुला मजाक बनाया गया है ! इसके उपरान्त भी श्रीराधाबाबा यदि वृन्दावन जानेकी धमकी देते हैं, तो उन्हें रोका किसने है ? वे भले ही वृन्दावन जावें।

श्रीसेठजीकी कठोर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ जब पू. राधाबाबाके पास और भी विकृत होकर पहुँची तो उन्होंने यह निर्णय कर लिया कि अबतक तो वे श्रीपोद्दार महाराजके निर्देशसे बँधे उनके पास रह रहे थे, किन्तु अब यदि सेठजी स्वयं उनको नहीं रोकेंगे तो वे पोद्दार महाराजकी रुचिकी उपेक्षा करके भी वृन्दावन चले जावेंगे। श्रीगोस्वामीजी चिम्मनलालजीने भी यह निर्णय कर लिया कि पू. श्रीराधाबाबाके गीतावाटिका छोड़कर वृन्दावन प्रस्थान करते ही वे भी कल्याण और कल्याणकल्पतरुके सम्पादनकार्यसे अपना त्यागपत्र दे देंगे। इधर तो श्रीसेठजीके प्रखर प्रहार चल ही रहे थे,उधर पू. राधाबाबाके सम्मुख

स्वयं ठाकुर घनश्यामने निष्कपट होकर रासधारी समाजियोंकी दुश्चरित्रताका ऐसा भण्डाफोड़ किया कि राधाबाबाका हृदय टूक–टूक होगया। उन्होंने निर्णय ही कर लिया कि वे अपने हृदयकी विशुद्ध प्रेममयी परम पवित्र एवं सत्य अनुभूतियोंको साथ लिये अपने प्राणप्यारे पोद्दार महाराजका त्याग करके वृन्दावनधाम कूच कर जावें ।

परन्तु प्रभुका विधान कुछ दूसरा ही था। प्रभुकृपासे संयोग ऐसा बना कि श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया इन्हीं दिनों गोरखपुर आये। उन्होंने श्रीसेठजीके सत्संगोंमें श्रीसेठजीकी आहतभावनाको दुखी मनसे सुना। श्रीकानोडियाजीकी श्रीपोद्दार महाराजसे बालमित्रता थी। और वे उनके सभी विचारोंसे बालकपनसे ही परिचित थे। वर्षोंतक वे गोविन्दभवनन्यासके महामन्त्री रहे । अतः सेठजीको भी अन्तर्हृदयसे भलीप्रकार जानते–समझते थे। इसी प्रकार इनका पू.राधा बाबासे पुराना परिचय था। श्रीराधाबाबासे इनका पत्राचार चलता था। श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया सीधे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबासे मिलने गीतावाटिका आये । श्रीराधाबाबाने उनसे अपने मनकी राई–रत्ती भावना निष्कपट अभिव्यक्त कर दी।

उन्होंने कहा कि –'या तो मुझे सर्वथा झूठा एवं दम्भी माना जावे, अथवा पागल माना जावे अन्यथा यदि मेरे सत्यपर किञ्चित् भी कोई विश्वास करे तो श्रीपोद्दार महाराज स्वयंको भी उस ब्रजवासी बालकमें कुछ अभूतपूर्व चिन्मयताका प्रकाश हुआ है । मैंने उसके द्वारा अभिनीत लीलाकी अपने मानस संकल्पोंसे बीसों बार परीक्षा की है, जब यह ठाकुर सर्वथा मेरे मनोनुरूप मेरी लीलाभावनाको बीसों–पच्चीसों बार अनवरत अभिव्यक्त कर गया , तभी इसमें मैंने मेरे आराध्य श्रीकृष्णको अभिनिविष्ट समझा है और उसका मेरे परमार्थ–धरातलपर सर्वथा चिन्मय प्रतिफल अनुभव करके ही उसका कणमात्र उच्छिष्ट प्रसादरूपमें ग्रहण किया है । जब मुझसे यह प्रसाद–ग्रहण–क्रिया प्रथम बार घटित हुई थी, उस समय तो मैं सर्वथा लोक–ज्ञानातीत दशामें रहा हूँ। दूसरी बार वैसी क्रिया करते समय मैं अवश्य होशमें था एवं मुझे अपने पितातुल्य सेठजीके सिद्धान्तोंको देखते हुए ऐसा नहीं करना चाहिये था परन्तु वैष्णवजगत्‌की भागवतधर्म–प्रतिपादक भावनाओंका भी मुझे रसजगतका साधक होनेके नाते पालन करना अनिवार्य था। यह बगीचा श्रीसेठजीका है। गीताप्रेस, कल्याण

पत्र, सभी संस्थायें श्रीसेठजीकी परम लोककल्याणकारी भावनाओं और सिद्धान्तोंकी समर्थक हैं । मेरी रस–समर्थक भावनाओंको वे यदि असह्य समझते हैं, तो मैं यह स्थान उनके प्रति पूर्ण आदर रखते हुए छोड़ना चाहता हूँ। मैं भविष्यमें भी ऐसे प्रसंग उपस्थित होनेपर उन्हें यह आश्वासन नहीं दे सकता कि मैं रासधारी ठाकुरोंसे भगवत्प्रसाद नहीं ग्रहण करूँगा। हाँ, इतना कह सकता हूँ कि ऐसे अवसरोंसे मैं बचना अवश्य चाहूँगा, परन्तु यदि ऐसा अवसर उपस्थित होगया और भविष्यमें भी मैंने किसी अज्ञात कारणोंवश उच्छिष्ट प्रसादका कणमात्र ग्रहण कर लिया तो श्रीसेठजी पुनः आहत होंगे , अतः मेरा यह स्थान छोड़ देना ही उपयुक्त होगा ।'

श्रीज्वालाप्रसादजीने पू.गुरुदेवकी सभी बातोंको बहुत ध्यानपूर्वक सुना, और वे श्रीसेठजीसे पुनः वार्ता करने गीताप्रेस चले गये। श्रीकानोड़ियाजीने इस सम्बन्धमें श्रीपोद्दार महाराजसे भी वार्ता की। श्रीपोद्दार महाराजको सभी बातोंका ज्ञान न हो, सो बात तो नहीं थी, परन्तु उन्होंने श्रीज्वालाप्रसादजीके सम्मुख ऐसा ही अभिव्यक्त किया मानो उन्हें तो कुछ भी भनक ही नहीं हो। वे अति क्षुभित होकर ज्वालाप्रसादजीसे कहने लगे कि यह भला कैसे संभव है कि श्रीराधाबाबा यहाँसे चले जावें । संसारी लोगोंको तो बात बिगाड़नेमें ही आनन्द आता है।

श्रीज्वालाप्रसादजी पुनः सेठजीसे मिले। उन्होंने श्रीसेठजीको पू. श्रीराधाबाबाद्वारा दिया समग्र स्पष्टीकरण भी सुनाया। श्रीसेठजीने उनसे कहा कि मैं स्वयं प्रातःकाल जाकर स्वामीजीसे भेंट करूँगा।

प्रातःकाल श्रीसेठजी गीतावाटिका आकर पू. राधाबाबासे मिले। उन्होंने कहा कि "मैं सर्वथा नहीं चाहता कि आप हम लोगोंको छोड़कर चले जावें। मैं तो उच्छिष्ट–ग्रहणको गीताशास्त्रानुसार तमोगुणी मानता हूँ और आपका उच्छिष्टग्रहण मुझे सर्वथा अनुचित लगा। आपके चले जानेकी बात मैंने कभी नहीं कही और ऐसी बातकी कोई स्फुरणा भी मेरे प्रसुप्त मनमें भी कभी उदित हो, तो भगवान्से मैं प्रार्थना करता हूँ कि उसकी छायाको भी वे तुरन्त मिटादें। मैं आपको एवं श्रीगोस्वामीजीको अपने आपसे भिन्न सर्वथा नहीं मानता और मैं आपसे यही प्रार्थना करूँगा कि आप भविष्यमें कभी किसीका उच्छिष्ट प्रसाद सर्वथा ग्रहण न करें। यही बात परमोत्तम होगी। आपके प्रति आनुगत्यके कारण

ही श्रीगोस्वामीजी जैसे आचारनिष्ठ व्यक्तिने उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण किया । मेरी दृष्टिमें यह सर्वथा अनुचित आचरण हुआ है। "

श्रीसेठजीकी छलरहित प्रीतिभरी बातें सुनकर पू. राधाबाबाका हृदय भर आया। उन्होंने उन्हें यही आश्वासन दिया कि मैं यथाशक्ति आपके अनुरोध का अवश्य पालन करूँगा , परन्तु किसी अवश परिस्थितिमें यदि मैं मात्र एक कण प्रसादरूपमें उच्छिष्ट ग्रहण कर लूँ, तो इसके लिये आपको विचार न कर, मुझे क्षमा कर देना चाहिये। —यह सुनकर श्रीसेठजी मुसकुराकर विदा हुए।

अब श्रीराधाबाबाका पू. पोद्दार महाराजको छोडकर कहीं भी आने—जानेका तो प्रश्न ही नहीं रहा था। अकारण ही जो विषम परिस्थिति उत्पन्न होगयी थी, वह सर्वथा समाप्त होगयी। श्रीसेठजीके विरोधसे सारे मारवाड़ी समाजका वातावरण इस प्रकारका द्वन्द्वात्मक होगया कि रासलीलावालोंकी जो अर्थप्राप्तिकी संभावनाएँ थीं, वे अति न्यून होगयीं। अतः उन्होंने गोरखपुरसे प्रस्थान करना ही उचित समझा। पू. श्रीपोद्दार महाराज और पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा भी उन्हें अधि रोकना नहीं चाहते थे, कारण, मण्डलीके समाजियोंकी चरित्र—न्यूनताकी अनेक घटनाएँ ठाकुरवेष धारण करनेवाले बालक घनश्यामने श्रीराधाबाबाके प्रति अपना सच्चा आन्तरिक निष्कपट प्रेम रखते हुए, उन्हें निस्संकोच बतला दी थीं। श्रीराधाबाबाने मण्डलीके स्वामीको स्पष्ट तौरपर कह दिया था कि उन्हें भविष्यमें गोरखपुर नहीं आना चाहिये। कारण, उनके गोरखपुर आनेपर घनश्याम ठाकुरके प्रति अतिशय प्रीतिभाव रखनेसे एवं उसमें अत्यंत उद्दीपक भगवद्भाव उत्पन्न होनेपर भावातिरेकमें उनकेद्वारा प्रसादग्रहण जैसी कोई भी संभावना घटित हो सकती है। वे श्रीसेठजीके प्रति अतिशय श्रद्धा और प्रेमके कारण ऐसी किसी परिस्थितिसे सर्वथा बचना चाहते हैं । अतः उनके प्रति यदि उन सबमें किञ्चित् भी प्रेम हो तो उन्हें गोरखपुर तबतक कदापि नहीं आना चाहिये, जबतक उन्हें वे स्वयं नहीं बुलावें। इस प्रकार अत्यन्त स्नेह एवं आत्मीयता प्रदर्शित करते हुए पू.श्रीराधाबाबाने रासमण्डलीको बिदा दी। वे लोग प्रस्थान कर गये।

———————